१

महाकवि सूरदास

इकाई की रूपरेखा :

१.० इकाई का उद्देश्य
१.१ प्रस्तावना
१.२ जीवन और कृतित्व
१.३ पुष्टिमार्ग और सूरदास
१.४ भ्रमरगीत परंपरा और सूरदास
१.५ सूरदास के भ्रमरगीत की विशेषताएँ
१.६ सूरदास की भाषा-शैली
१.७ सारांश
१.८ व्याख्या - उदाहरण
१.९ लघुत्तरीय प्रश्न
१.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न
१.११ संदर्भ ग्रंथ

१.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत सम्मिलित की गई विषयवस्तू के अध्ययन से छात्रों को निम्नलिखित जानकारी देने का उद्देश्य निहित है।

- महाकवि सूरदास जीवन और कृतित्व से परिचय कराना।
- महाकवि सूरदास के पृष्टिमार्ग को स्पष्ट करना।
- भ्रमरगीत परंपरा और सुरदास की जानकारी देना।
- भ्रमरगीत की विशेषताओं से परिचित कराना।
- सूरदास की भाषा-शैली से स्पष्ट करना।

१.१ प्रस्तावना

हिन्दी की कृष्णभक्ति धारा में सूरदास का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, बल्कि वह सिरमौर ही माने जाते हैं। अधिकतर विद्वान हिन्दी साहित्य में कृष्णकाव्य की परंपरा को प्रवाहित करने वाले पहले कवि के रूप में मैथिल कोकिल विद्यापति को मान्यता देते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने कृष्णकाव्य की शुरुआत 'गीतगोविंद' के रचयिता जयदेव से मानी है। विद्यापति ने

munotes.in

श्रीकृष्ण की प्रेममयी माधुर्य भावना से भरे हुए गीतों की रचना की थी। उनके गीतों की भाषा मैथिली है। जबकि सूरदास ने ब्रजभाषा में भक्ति भावना से भरे हुए सरस गीतों और पदों की रचना की है। कृष्णभक्ति के गीत ब्रज की लोक संस्कृति में सूरदास से पहले भी गाए जाते थे। इसका संकेत देते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि, "सूरसागर किसी चली आती हुई गीतिकाव्य परंपरा का चाहे - वह मौखिक ही रही हो - पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।" परंतु कृष्णभक्ति काव्य की परंपरा में वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि के रूप में सूरदास को ही मान्यता देते हैं।

सूरदास ने वल्लभाचार्य जी से दीक्षा ली थी और पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए थे। आचार्य वल्लभाचार्य जी के स्वर्गवास के पश्चात वल्लभ संप्रदाय की गद्दी पर उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलदास बैठे और उन्होंने अपने पिता के चार शिष्यों - कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास तथा अपने चार शिष्यों - गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास को लेकर आठ श्रेष्ठ कवियों द्वारा अष्टछाप की स्थापना की थी। यह सभी भगवान कृष्ण की लीलाओं का गान करनेवाले कवि थे और यह सभी आचार्य वल्लभ और गोस्वामी विट्ठलदास के अनुरोध पर विभिन्न राग-रागिनियों में कृष्णभक्ति संबंधी गीतों की रचना किया करते थे। इन सभी कवियों ने ब्रज भाषा में अपने गीतों की रचना की। इन सभी में सूरदास को सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इन कवियों के अतिरिक्त मीराबाई, नरोत्तमदास, हरिराय, गोविंददास, स्वामी हरिदास तथा हित हरिवंश भी कृष्ण-काव्य धारा के महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। हित हरिवंश को राधा वल्लभ संप्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है।

कृष्णभक्ति काव्य की परंपरा भक्तिकाल के बाद रीतिकाल और आधुनिक काल तक अनवरत रूप से चलती रही जिसमें ग्वाल कवि, घनानंद, बिहारी, भगवत रसिक, नागरी दास, बृजवासी दास, गिरधर दास, कृष्णदास, सरयूराम आदि रीतिकालीन कवि तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र, पंडित सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथप्रसाद रत्नाकर, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, वियोगी हरि, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद आदि न जाने कितने कवि इस परंपरा के अंतर्गत आते हैं, परंतु संपूर्ण काव्यधारा का अवलोकन करने के बाद इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि सूरदास के द्वारा जिस माधुर्य और भक्ति भावना के साथ रचना कर्म किया गया वैसा अन्य कोई कवि नहीं कर सका। विभिन्न राग रागिनियों में सरस पदों की रचना करते हुए सूरदास ने कृष्ण के अलौकिक रूप के माध्यम से अद्भुत आध्यात्मिक भावना की सृष्टि की है और अपने इष्ट कृष्ण के अत्यंत आकर्षक रूप को लोक के सामने देखा है। निश्चित रूप से कृष्णभक्ति धारा में सूरदास का स्थान अन्यतम है।

१.२ जीवन और कृतित्व

महाकवि सूरदास हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल के कृष्णभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। सूरदास के जीवन के संबंध में तमाम भ्रांतियाँ हैं और निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना संभव नहीं है। उनके जीवनवृत्त के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए आधारभूत सामग्री दो रूपों में प्राप्त होती है - अंतःसाक्ष्य और बाह्यसाक्ष्य। अंतःसाक्ष्य के रूप में जो सामग्री उपलब्ध है, उसके अंतर्गत सूरदास के पदों में प्राप्त होने वाले आत्मकथन आते हैं। परंतु इनमे निश्चित तिथियों का उल्लेख न होने के कारण उनके जीवन के निर्धारण में यह विशेष सहायक सिद्ध नहीं होते। इस तरह के आत्मकथन उस समय प्रायः सभी भक्त कवियों के काव्य में मिलते हैं, परंतु इनके आधार पर वास्तविक जीवन की कल्पना संभव नहीं है।

बाह्यसाक्ष्य के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सांप्रदायिक साहित्य तथा वार्ता साहित्य है, जिसमें सूरदास जी का उल्लेख हुआ है। जैसे, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निजवार्ता, श्रीहरिराय कृत भावप्रकाश, बल्लभ-दिग्विजय, अष्ट सखामृत, संप्रदाय-कल्पद्रुम, भाव-संग्रह, वैष्णवाह्निक-पद आदि। इनके अतिरिक्त कुछ समकालीन अथवा परवर्ती भक्तों के ग्रंथ भी हैं जिनमें सूरदास का उल्लेख है, जैसे - नाभादास कृत भक्तमाल, प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका, ध्रुवदास कृत भक्त नामावली, ठाकुर रघुराज सिंह कृत राम रसिकावली, कवि मियाँ सिंह कृत भक्त-विनोद, नागरीदास कृत नागर समुच्चय आदि। कुछ तत्कालीन इतिहास ग्रंथों में भी सूरदास का उल्लेख मिलता है, जैसे - आईने अकबरी, मुंतखिब-उल-तवारीख, मुंशीयात-अबुल-फज़ल आदि। कुछ आधुनिक इतिहास एवं शोधग्रंथों से भी सूर के जीवन पर प्रकाश पड़ता है, जैसे - काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, गार्सा द तासी का इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐंदुई एन्दुस्तानी, शिव सिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज, जॉर्ज ग्रियर्सन कृत द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान, मिश्रबंधु कृत मिश्रबंधु विनोद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा कृत हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास। इन सभी ग्रंथों से महाकवि सूर के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है और इन्हीं के आधार पर उनके जीवन के संबंध में घटनाओं को निश्चित करने का प्रयास किया गया है।

सूरदास की जन्म तिथि के संबंध में विद्वानों में अलग-अलग मत प्रचलित हैं कुछ विद्वान संवत १५४०, कुछ संवत् १५३५ तथा कुछ विद्वान संवत १५३० को सूर की जन्म तिथि मानते हैं। संवत १५४० को सूरदास की जन्मतिथि मानने वाले विद्वानों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर', 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' का उल्लेख करते हुए उनका जन्म संवत १५४० निर्धारित किया है। संवत १५४० वाले मत का समर्थन डॉ. रामकुमार वर्मा एवं नलिनी मोहन सान्याल ने भी किया है। सूरदास का जन्म संवत् १५३५ मानने वाले विद्वानों में डॉ. दीनदयाल गुप्त, डॉ ब्रजेश्वर वर्मा एंव डॉ. हरबंसलाल शर्मा आदि का नाम प्रमुख है। इन विद्वानों ने सूरदास के अंतः साक्ष्यों के द्वारा उनकी जन्मतिथि संवत् १५३५ निर्धारित की है। आचार्य नंददुलारे वाजपेई ने सूरदास का जन्म संवत् १५३० माना है, परंतु वे अपने इस मत के समर्थन में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दे सके हैं। इस तरह सूरदास की जन्मतिथि को लेकर विद्वानों के कई वर्ग हैं जो अपने-अपने मत का समर्थन करते हैं। जन्मतिथि की भाँति सूरदास के जन्मस्थान को लेकर भी काफी मतभेद हैं। कुछ विद्वान दिल्ली के निकट 'सीही' को उनका जन्मस्थान मानते हैं। कुछ आगरा जिले में स्थिर 'रूनकता' नामक गाँव को उनका जन्मस्थान मानते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, मिश्रबंधु, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. मुंशीराम शर्मा तथा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वान आगरा के निकट स्थिर रूनकता नामक गाँव को सूर का जन्मस्थान मानते हैं। इसके लिए उन्होंने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को प्रमाण माना है। दूसरी तरफ द्वारिका प्रसाद पारीख और प्रभुदयाल मीतल जैसे विद्वानों ने सूर का जन्मस्थान सीही को माना है।

जन्म और जन्मस्थान की भाँति सूरदास जी की मृत्यू के संबंध में भी विद्वानों में बहुत मतभेद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सुरदास द्वारा रचित 'साहित्य लहरी' और 'सूरसागर' जैसे ग्रंथों का रचनाकाल निर्धारित करते हुए यह माना है कि सूरदास की मृत्यू संवत् १६२० के आसपास अनुमानित की जा सकती है। डॉ. दीनदयाल गुप्त अपने प्रमाणों के आधार पर सूरदास की मृत्यू का अनुमान संवत १६३९ में मानते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार संवत १६४२ की तिथि सूरदास की मृत्यू तिथि के रूप में स्वीकार की जा सकती है। इसी प्रकार डॉ.

हरबंसलाल शर्मा, डॉ. बृजेश्वर वर्मा आदि विद्वानों ने भी सूरदास की मृत्यू तिथि का अनुमान अपने प्रमाणों के आधार पर किया है। वस्तुतः सूरदास के जीवन संबंधी अन्य बातों के साथ-साथ उनकी मृत्यू तिथि भी विवादित है, परंतु उनकी मृत्यू स्थान के संदर्भ में सभी विद्वान एकमत हैं और उनके अनुसार सूरदास की मृत्यू गोवर्धन के निकट पारसोली नामक ग्राम में हुई थी और यह भी कि उनकी मृत्यू स्थल पर वल्लभाचार्य जी के पुत्र गोसाई विट्ठलनात भी उपस्थित थे। सूरदास जी के वंश, जाति आदि के संबंध में 'साहित्य लहरी' के एक पद के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि वह पृथ्वीराज रासो के रचयिता कवि चंदबरदाई के वंशज भट्ट ब्राह्मण थे परंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस पद को प्रक्षिप्त मानते हुए इस मत को अस्वीकार किया है। मिश्र बंधु, डॉ. दीनदयालु गुप्त, हरबंसलाल शर्मा आदि विद्वानों ने इनको सारस्वत ब्राह्मण माना है परंतु समस्या यह है कि सूरदास का न तो जन्म और न ही जन्मस्थान पूरी तरह से निर्धारित हो सका है, ऐसे में उनकी वंशावली आदि के बारे में प्रामाणिक ढंग से कुछ कह पाना असंभव है। हरिराय कृत वार्ता तथा बल्लभ दिग्विजय के अनुसार सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे। 'बल्लभ दिग्विजय' के रचयिता सूरदास के गुरु-पुत्र गोस्वामी यदुनाथजी का समय संवत १६१५ से संवत १६६० तक माना जाता है अतः इस आधार पर अधिकतर विद्वान सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करते हैं।

सूरदास जी ने अपने जीवनकाल में कभी औपचारिक शिक्षा पाई हो, इसका कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विद्वानों के अनुसार उनमें काव्य सृजन की स्वाभाविक प्रतिभा थी और साधु संगति से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी क्रम में गीत-संगीत आदि से भी उनका परिचय हुआ। इस तरह उन्होंने व्यवहारिक जीवन जीते हुए ही यह सब कुछ हासिल किया। हाँ, यह अवश्य है कि उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य जी से गुरुदीक्षा प्राप्त की थी और उसी अनुसार पुष्टिमार्गी भक्ति का वे आजीवन अनुसरण करते रहे।

सूरदास के कृतित्व के संदर्भ में भी कई मत-मतान्तर हैं। सूरदास के समसामयिक ग्रंथों में अथवा वार्ता साहित्य में सूरदास की रचनाओं के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। वार्ता साहित्य में केवल यह संकेत प्राप्त होता है कि सूरदास ने लगभग सवा लाख पदों की रचना की थी। आधुनिक काल में कई विद्वानों ने सूरदास की रचनाओं पर अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज-रिपोर्ट के अनुसार सूरदास के १६ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने सूरदास की १६ रचनाओं का उल्लेख किया है। इसी तरह डॉ. दीनदयालु गुप्त ने १४ रचनाओं को गिनाया है। 'सूर निर्णय' के लेखक प्रभुदयाल मीतल और द्वारकादास पारीख ने सूर की प्रामाणिक रचनाओं की संख्या ७ मानी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास जी के द्वारा रचित केवल तीन रचनाओं का उल्लेख किया है, जो उनके अनुसार प्रामाणिक हैं। ये रचनाएं हैं - सूरसागर, साहित्य लहरी और सूरसारावली। उपर्युक्त उल्लेखित सभी विद्वानों ने अपनी रचनाओं की संख्या में इन तीन रचनाओं को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया है। इस प्रकार यह तीन रचनाएँ तो सूरदास के द्वारा रची गई हैं। डॉ. हरबंसलाल शर्मा ने भी सूरदास द्वारा रचित २५ ग्रंथों का उल्लेख करते हुए इन्हीं तीनों ग्रंथों को प्रामाणिक माना है।

१.३ पुष्टिमार्ग और सूरदास

सूरदास सगुण भक्ति की कृष्ण काव्यधारा के हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने सगुण रूप में ईश्वर की भक्ति को महत्व दिया है। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व उनकी भक्ति

में निर्गुण आदि का प्रभाव भी देखने को मिलता है परंतु एक बार वल्लभाचार्य जी के संपर्क में आने और पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद उन्होंने भक्ति का जो पथ सुनिश्चित किया, आजीवन उस पर चलते रहे। उनकी भक्ति में विनय है, ईश्वर से अनुग्रह और कृपा की आकांक्षा है। पुष्टिमार्ग की व्यवहारिक अभिव्यक्ति जिस तरह से सूर ने अपने काव्य में की है, उसी के चलते गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सूरदास को पुष्टिमार्ग के जहाज की संज्ञा दी थी। वैसे तो सूरदास ने नवधा भक्ति के सभी रूपों का वर्णन अपने काव्य में किया है, परंतु सख्यभक्ति, वात्सल्य भक्ति और मधुरा भक्ति प्रमुख रूप से उनके काव्य में देखने को मिलती है।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के दसवें अध्याय में वर्णित विषयों में एक 'पोषण' भी है। 'पोषण तदनुग्रह' के अनुसार भक्तों के ऊपर भगवान की कृपा का नाम ही पोषण है। वल्लभाचार्य जी ने इसी शब्द के आधार पर भगवत भक्ति को पुष्टि का नाम दिया। पुष्टिमार्ग के अंतर्गत भगवान की भक्ति साधन या साध्य न होकर ईश्वर के आग्रह पर या कृपा पर अवलंबित है। इस मार्ग में ईश्वर-अनुग्रह पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसके अंतर्गत यह माना जाता है कि ईश्वर ही भक्तों का कल्याण करता है और भक्ति का यह अमृत जिसको प्राप्त नहीं है उसका जीवन व्यर्थ है। भक्त अपने आप को पूरी तरह से ईश्वर को समर्पित कर देता है। इस विश्वास को अभिव्यक्त करते हुए सूरदास कहते हैं -

जापर दीनानाथ ढरै।
सोई कुलीन, बड़ी सुंदर, सोइ, जिहिं पर कृपा करै।
कौन विभीषन रंक-निसाचर, हरि हंसि छत्र धरै।
राजा कौन बड़ी रावन तैं, गर्वहिं - गर्व गरै।
रंकव कौन सुदामाहूं ते, आप समान करै।

पुष्टिमार्गीय भक्ति के अंतर्गत ईश्वर की अनुकंपा प्राप्त करने के लिए ज्ञान, योग एवं उपासना आदि का कोई मूल्य नहीं है। पुष्टि के द्वारा ही यह संभव है। सूरसारावली में सूरदास कहते हैं - 'कर्मयोग, ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो। श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो।' सूरदास एक भक्त कवि थे। उन्होंने भक्ति का कोई सैद्धांतिक विवेचन नहीं किया है बल्कि उनके काव्य में भक्ति के संबंध में उनकी भावना की अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य में गोपियों से संबंधित प्रसंगो का नियोजन पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना के आधार पर ही किया गया है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुसार ही सूर की गोपियाँ संसार के समस्त सुख साधनों को त्याग कर केवल मात्र प्रेम के बल पर ईश्वर को अपने वश में करती हैं। इसी प्रेमतत्व में पुष्टिमार्ग व्यंजित होता है। वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टि मार्ग में सेवा का अत्यंत महत्व है। उनके अनुसार सेवा के तीन अंग हैं - भोग, राग और श्रृंगार। सेवा के अंतर्गत गुरु-सेवा, संत-सेवा, प्रभु-सेवा, ईश्वर का श्रृंगार, संध्या, आरती, उत्सव, हिंडोला, बसंत फाग आदि का विशेष महत्व है और सूरदास ने इन सभी से संबंधित अभिव्यक्ति अपने पदों में की है।

पुष्टिमार्ग की स्थापना आचार्य वल्लभाचार्य (सं. १५३५-१५८७) के द्वारा की गई थी। दार्शनिकता की दृष्टि से उनके द्वारा प्रतिपादित मत शुद्धाद्वैतवाद, ब्रह्मवाद और अविकृत परिणामवाद के नाम से जाना जाता है। उस समय द्वैत और अद्वैत का विवाद दार्शनिक क्षेत्र में अत्यंत चर्चित था। अद्वैतवादियों के अनुसार निर्गुण ब्रह्म माया से सम्बद्ध होकर सगुण प्रतीत होता है। सगुण भक्ति के समर्थक आचार्य वल्लभ ने अद्वैतवाद की इस धारणा का खंडन किया और

बताया कि ब्रह्म में निर्गुण और सगुण तत्व दोनों ही स्वाभाविक हैं, और यह ब्रह्म की महिमा के कारण है, माया संबंध के कारण नहीं। क्योंकि कार्य-कारण रूप 'ब्रह्म', माया संबंध रहित होने के कारण शुद्ध है, इसीलिए यह सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद के नाम से जाना गया। वल्लभाचार्य जी ने ब्रह्म, जीव और जगत तीनों को ब्रह्म रूप माना है, इसीलिए इस सिद्धांत को ब्रह्मवाद भी कहते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म सत्, चित, आनंद स्वरूप है। जीव ब्रह्म ही है परंतु उसमें केवल सत् और चित् का ही समावेश है। इसी प्रकार जगत भी ब्रह्म ही है परंतु उसमें केवल सत् तत्व है। जगत के संबंध में वल्लभाचार्य जी का मानना है कि निर्गुण - निराकार ब्रह्म ही अविकृत भाव से जगत के रूप में परिणत हो जाता है इसीलिए इस दर्शन को 'अविकृत परिणामवाद' भी कहा जाता है।

भक्ति साधन की दृष्टि से आचार्य वल्लभाचार्य जी के मत को पुष्टिमार्ग के नाम से जाना जाता है। पुष्टि अर्थात पोषण का अर्थ है - भगवान का अनुग्रह। इसके अनुसार भगवान के अनुग्रह को ही सब कुछ माना जाता है। जीव को भगवान के अनुग्रह के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। ईश्वर के पोषण या अनुग्रह को अधिक महत्व देने के कारण ही इस मत को पुष्टिमार्ग के नाम से जाना गया। महाकवि सूरदास पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे, अतः पुष्टिमार्गीय सिद्धांतों का प्रभाव उन पर पाया जाना स्वाभाविक ही है। सूरदास एक कवि थे न कि तत्वचेता दार्शनिक, इसीलिए उनकी कविता में पुष्टिमार्ग से संबंधित सिद्धांत, सिद्धांत रूप में नहीं आए हैं बल्कि उनकी कविता में कई स्थलों पर इसका आभास मिलता है। उनके काव्य में गोपियों का व्यक्तित्व पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना के आधार पर ही नियोजित किया गया है। जिस प्रकार पुष्टिमार्गीय भक्त अपने को पूर्णतः अपने इष्ट पर छोड़ देता है, सूरदास के काव्य में विरहणी गोपियों की स्थिति भी ऐसी ही है, जहाँ उन्हें अपने प्रेम और भक्ति पर विश्वास है और उसी प्रेम और भक्ति के सहारे वे ईश्वर को प्राप्त करती हैं। सूरदास के काव्य में पुष्टिमार्गी भक्ति का यही व्यवहारिक प्रतिफलन है।

सूरदास के काव्य में केवल पुष्टिमार्ग ही नहीं बल्कि उस समय प्रचलित अन्य दार्शनिक सिद्धांत भी वर्णित किए गए हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह पुष्टिमार्ग में दीक्षित अवश्य थे परंतु अपनी तर्क बुद्धि के अनुसार वे अन्य सिद्धांतों को भी स्वीकार करते थे उनकी दृष्टि खंडन नहीं मंडल में थी वैसे भी उनका उद्देश्य इन दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन नहीं बल्कि कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्त करना था इसीलिए उनके काव्य में जहाँ पुष्टिमार्गीय भक्ति से संबंधित उद्धरण आए हैं वही इन सिद्धांतों से अलग भी उन्होंने अपने विचारों को प्रकट किया है इनमें सबसे प्रमुख है राधा की प्रकृति रूप में कल्पना और कृष्ण एवं राधा के संबंध को पुरुष प्रकृति का संबंध मानना। सूरसागर के दशम स्कंध में राधा कृष्ण का दार्शनिक संबंध प्रकट करते हुए कहते हैं -

ब्रजहिं बसैं आपुहि बिसरायौ
प्रकृति - पुरुष एकहि कर जानहु, बातनि भेद करायौ।

वास्तव में पुष्टिमार्ग के व्याख्याता आचार्य वल्लभाचार्य ने राधा की कोई चर्चा नहीं की है। उन्होंने 'या जगतकारणभूता भगवतशक्तिः सा योगमाया' ही कहा है। वल्लभ संप्रदाय में राधा का उल्लेख विट्ठलनाथ जी के समय में होने लगा था। राधा भगवान की आह्लादनी-शक्ति के रूप में मानी गई थी। परंतु सूर ने अपनी मौलिक दृष्टि का परिचय देते हुए उनका वर्णन पुरुष-प्रकृति रूप में किया है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुसरण में कृष्ण का परमब्रह्मत्व व उनका विरुद्धधर्मत्व तथा जीव और जगत का अंशरूपत्व आदि सूरदास के काव्य में मिल जाता है। इसी प्रकार जगत

की ब्रह्ममयता को भी उन्होंने स्वीकार किया है और सूर सारावली में स्पष्ट रूप से ब्रह्मांड, देव, माया, काल, प्रकृति, पुरुष, श्रीपति, नारायण आदि सभी को कृष्ण का अंश कहा है। सूर ने विद्या और अविद्या अर्थात माया का भेद भी स्वीकार किया है। उनके अनुसार विद्या, माया या अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाली है। इष्ट के अनुग्रह से ही विद्या का उदय होता है। मैं का भाव नष्ट हो जाता है और वह समस्त जगत में आत्मरूप का दर्शन करता है। इस तरह सूरदास पुष्टिमार्ग में दीक्षित अवश्य थे, परंतु उन्होंने पुष्टिमार्गीय दार्शनिक विचारों से कुछ अलग मान्यताएँ अपने काव्य में अभिव्यक्त की हैं।

भक्ति के लिए विनयशील होना अत्यंत आवश्यक है। अहंकार को छोड़कर ही मनुष्य भक्ति के मार्ग को अपना सकता है। सूरदास ने विनय संबंधी बहुत से पदों की रचना की है। भक्ति मार्ग में विनय का अर्थ है - ईश्वर के सम्मुख विनम्रता या दीनता अभिव्यक्त कर उससे अनुग्रह की आशा करना। विनय मनुष्य के ह्रदय और ईश्वर के बीच एक भावनामय सेतु का निर्माण करती है। विनय के द्वारा मनुष्य का ह्रदय ईश्वर की ओर निष्काम भाव से आकर्षित हो जाता है। ईश्वर सृष्टि की समस्त शक्तियों, विद्याओं और गुणों का अनादि अनंत स्त्रोत है। मनुष्य की शक्तियाँ परमात्मा के सामने क्षुद्र हैं। ईश्वर की बनाई हुई इस महान सृष्टि के सामने मनुष्य अत्यंत क्षुद्र है परंतु अपनी सुंदरता के आभास के साथ विनयपूर्वक जब मनुष्य ईश्वर से संबंध स्थापित करता है तब उसे ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होता है। वैष्णव संप्रदाय के अनुसार विनय के अंतर्गत दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण का समावेश होना चाहिए। बिना इनके विनय पूर्ण नहीं हो सकती। सूरदास ने अपने पदों में इन सभी का वर्णन किया है। उनके विनय संबंधी पद आडंबरमुक्त हैं। सूरदास ने भक्ति में तल्लीन होकर निष्कपट भाव से स्वाभाविक अभिव्यक्ति के द्वारा ऐसे पदों की रचना की है।

१.४ भ्रमरगीत परंपरा और सूरदास

कृष्णभक्ति परंपरा में भ्रमरगीत प्रसंग नई-नई उद्‌भावनाओं की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सूरदास ने भी इस प्रसंग को अपने पदों से समृद्ध किया है। भ्रमरगीत प्रसंग का सर्वप्रथम उल्लेख श्रीमद्भागवत में मिलता है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध पूर्वार्ध के छियालीसवें तथा सैंतालीसवें अध्याय में उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार कंस के निमंत्रण पर श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा गए और वहाँ कंस का वध कर अपने माता तथा पिता देवकी-वसुदेव का उद्धार किया और वहाँ की सत्ता संभाल ली। वह अपने राजकाज में इतने अधिक व्यस्त हो गए कि लंबे समय तक मथुरा में ही बने रहे। दूसरी तरफ ब्रज में नंद-यशोदा और समस्त गोप-गोपियों सहित कृष्ण के वियोग में सभी अत्यंत दुःखी थे। गोकुल से लगातार कृष्ण के पास संदेश भी आते रहे। ऐसे में श्री कृष्ण भी इस विषय पर चिंतित हुए कि कैसे इस समस्या का समाधान किया जाए। अंततः श्रीकृष्ण ने गोप-गोपियों सहित अपने सभी प्रियजनों को समझाने हेतु अपने मित्र उद्धव को ब्रज भेजा और इसी प्रस्तावना के बाद भ्रमरगीत की भूमिका आरंभ होती है। श्रीकृष्ण के द्वारा उद्धव को ब्रज भेजने का कारण यह था कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा घमंड था और कृष्ण चाहते थे कि उनका घमण्ड दूर हो जाए और साथ ही वे भक्ति की महिमा को भी समझे। कृष्ण को अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त अवसर जान पड़ा और उन्होंने उद्धव को ब्रज भेज दिया।

ब्रज में आते हुए उद्धव ब्रजभूमि के सौंदर्य का अद्भुत वर्णन करते हैं और वहाँ पहुँचकर सबसे पहले नंद और यशोदा से मिलते हैं। नंद-यशोदा से मिलकर उनकी व्यथा सुनते हैं और

उन्हें भांति-भाँति से समझाते भी हैं। अगली सुबह वे गोपियों से मिलते हैं जो तमाम उलाहनों के उद्धव को किंकर्तव्यविमूढ़ कर देती हैं। वे कृष्ण को स्मरण कर बार-बार रोती हैं। इसी समय एक भ्रमर आकर एक गोपी के पैर में बैठ जाता है और फिर सभी गोपियाँ उसी को संबोधित करके पुरुषों द्वारा प्रेम में किए गए विश्वासघात को लक्ष्य बनाकर तमाम उलाहने देती हैं। अंत में उद्धव गोपियों के प्रेम की सराहाना करते हैं और स्वयं ब्रज-रज होने की आकांक्षा प्रकट् करते हैं। कुछ़ समय बिताने के बाद जब उद्धव वापस मथुरा जाने लगते हैं तब सभी गोप-गोपियों और नंद-यशोदा से सभी प्रियजन उद्धव से यही कहते हैं कि वे कृष्ण में ही रमे रहना चाहते हैं। वास्तव में श्रीमद्भागवत में वर्णित इस प्रसंग को ही आधार सुरदास सहित अन्य कवियों ने अपनी-अपनी मौलिक सामर्थ्य के अनुसार भ्रमरगीत प्रसंग की रचना की है।

हिंदी में भ्रमरगीत की परंपरा का प्रवर्तन करने का श्रेय सुरदास को ही है। अपने भ्रमरगीत में सूरदास ने जिस तरह सहज और स्वाभाविक शैली में विभिन्न मनोदशाओं के सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण करते हुए प्रेमाभक्ती की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। सूरदास के भ्रमरगीत के साथ हिंदी में भ्रमरगीत की एक परंपरा की शुरूआत हुई, जो कम या अधिक मात्रा में आधुनिक काल तक चलती रही। भक्तिकाल में नंददास, परमानंददास, गोस्वामी तुलसीदास आदि ने भ्रमरगीत काव्य की रचना की। रामकाव्य के मर्मज्ञ तुलसीदास भी इस प्रसंग के वशीभूत होकर रचना करने से अपने को रोक नहीं सके। रीतिकाल में रहीम, देव, पद्माकर, मतिराम, चाचा वृंदावनदास, अक्षर अनन्य, घनानंद, भिकारी दास आदि ने इस तरह की रचनाएँ की परंतू सूरदास जैसा व्यवस्थित वर्णन रीतिकाल के किसी भी कवि ने नहीं किया, केवल कुछ छ़ंदो के द्वारा ही इति मान ली। आधुनिक काल में भारतेंदू हरिश्चंद्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जगन्नाथदास रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', डॉ. सत्यनारायण, द्वारिकाप्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दीक्षित आदि कवियों में इस प्रसंग को लेकर कुछ फुटकर छंदों की रचना की। आधुनिक काल में भ्रमरगीत प्रकरण के मूल भाव को बदल दिया गया और एक नवीन दृष्टी से उसका वर्णन किया गया। इस काल के कवि जन-जीवन को लेकर अत्यंत सचेत हो गए थे अतः उन्होनें राधा और कृष्ण के चरित्र को नायक-नायिका के रूप में वर्णित न करते हुए एक समाजसेवी की तरह प्रस्तुत किया पर क्योंकि मूल कथानक वही रहा अत: ऐसे काव्यों को भ्रमरगीत परंपरा के अंतर्गत ही स्थान दिया जाता है। वास्तव में सूरदास से शुरू हुई इस परंपरा में अब तक एक मात्र उन्हीं का भ्रमरगीत ऐसा है, जिसमें भ्रमरगीत के समस्त लक्षणों का निर्वाह किया गया है। इसीलिय इस परंपरा का सर्वश्रेष्ठ काव्य सूरदास के भ्रमरगीत को ही माना जाता है।

भ्रमरगीत प्रसंग हिंदी के कवियों को हमेशा प्रिय रहा है और इसीलिए भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक इसमें रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। युगानुकूल परिवर्तन भी दिखाई देते हैं। भ्रमरगीत काव्य परंपरा ब्रजभाषा से आरंभ हुई थी। आधुनिक काल में खड़ी बोली में कुछ कवियों के द्वारा रचनाऐँ की गयीं। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिओध जी नें अपने महाकाव्यात्मक ग्रंथ 'प्रियप्रवास' में खड़ी बोली में ही इस प्रसंग की रचना की है।

१.५ सूरदास के भ्रमरगीत की विशेषताएँ

हिंदी में भ्रमरगीत परंपरा की शुरुआत महाकवि सूरदास के द्वारा की गई। सूरदास के पश्चात भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में अनेक कवियों ने भ्रमरगीत प्रसंग पर काव्य-रचना की परंतू सूरदास उन सब में अन्यतम हैं। उनके द्वारा रचा गया भ्रमरगीत अधिक

व्यवस्थित और सुष्ठु है। उन्होंने उसे कथाबद्ध रूप में रचा है। इसके आरंभ में वे कृष्ण के गोकुल संबंधी अनुराग, उद्धव के ज्ञान संबंधी अहंकार और कृष्ण के द्वारा उद्धव के इस अहंकार को दूर करने के बारे में विचार, परिणामस्वरूप उद्धव को गोकुल भेजने के लिए तैयार करना, नंद-यशोदा तथा गोप-गोपियों के लिए साथ में पत्र भेजना, उद्धव की ब्रजयात्रा का मार्ग-वर्णन, ब्रज पहुँचकर उद्धव के द्वारा नंद-यशोदा आदि से मिलना, उन्हें कृष्ण के हाल-समाचार देना, इसके बाद गोप-गोपियों से मिलना और उन्हें समझाने का प्रयास करना तत्पश्चात गोपियों का अपनी व्यंग्योक्तियों द्वारा उद्धव के ज्ञान संबंधी अहंकार का खंडन करना और अंत में उद्धव का भक्ति के महत्व को समझना और वापस जाना आदि प्रसंगों के द्वारा सूरदास ने कथाबद्ध रूप में अपने भ्रमरगीत की रचना की है।

सूरदास का भ्रमरगीत अपनी वक्रोक्तियों, वाग्वैदग्ध्य और व्यंग्योक्तियों आदि के कारण अत्यंत अनूठा बन गया है। भाषा का चमत्कार पूर्णरूप से दर्शाने में सूरदास को सफलता मिली है। उद्धव लगातार उन्हें निर्गुण का उपदेश समझाते जा रहे हैं और दूसरी तरफ गोपियाँ हार मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उद्धव को अपनी तरह-तरह की उक्तियों से लगातार पीटती जा रही हैं। उद्धव को लग रहा है कि कृष्ण की मंशा की सिद्धि आवश्यक है और गोपियाँ उद्धव के हर तर्क को अपनी सहज उक्तियों से लगातार काटती जा रही हैं। उद्धव और गोपियों के आपस के तर्क-वितर्क में भाषा का अनूठापन देखते ही बनता है। उद्धव गोपियों को कृष्ण का संदेश सुनाते हुए कहते हैं -

सुनौ गोपी हरि कौ संदेस।
करि समाधि अंतरगति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेस।
वै अविगत अबिनासी पूरन, सब घट रहे समाइ।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ। २७८

अर्थात गोपियों, कृष्ण का संवाद सुनो। समाधि लगाकर अंतर में ध्यान करो, यही उनका संदेश है। वे अविगत, अविनाशी, पूर्ण तथा सभी घट में व्याप्त हैं। वेद तथा पुराणों में गाया गया है कि तत्व ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती। उद्धव के समझाने पर गोपियाँ उद्धव पर ही उलटवार करते हुए कहती हैं -

देन आए उधौ मत नीकौ।
आवहु री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजस कौ टीकौ।
तजन कहत अम्बर आभूषण, गेह नेह सुत ही कौ।
अंग भस्म करि सीस जटा धरि, सिखवत निरगुन फीकौ।

अर्थात उद्धव सुंदर मत देने को आए हैं। चतुर सखियों आओ, सब मिलकर सुनो तथा सुयश का टीका लो। उद्धव हमसे वस्त्र, आभूषण, घर, स्नेह तथा पुत्र को भी छोड़ने को कहते हैं। अंग में भस्म लगाने की, सिर पर जटा धारण करने की तथा फीके निर्गुण की सीख देते हैं। इसके बाद वे उद्धव पर व्यंग करते हुए कहती हैं -

समुझि न परति तिहारी उधौ।
ज्यौं त्रिदोष उपजै जक लागत, बोलत बचन न सूधौ।
आपुन कौ उपचार करौ अति, तब औरन सिख देहु।
....
सूरदास मुक्ताहल भोगी, हंस जवारि क्यौं चुनिहै।

अर्थात, उद्धव तुम्हारी बात हमें समझ में नहीं आती। जैसे बात, पित्त तथा कफ के समन्वय से एक जक उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही तुम शुद्ध और सीधी बात नहीं बोलते हो। पहले अपना उपचार करो तब औरों को सीख दो। उद्धव की निर्गुण आराधना की सीख पर गोपियाँ कहती हैं कि मुक्ताफल का भोगी हंस, ज्वार को क्यों चुनेगा अर्थात कृष्ण के प्रेमभक्ति में रमी हम कृष्ण को कैसे छोड़ कर तुम्हारा निर्गुण अपनाएँ। संवाद रूप में रचा गया पूरा भ्रमरगीत ऐसी ही व्यंग्योक्तियों से भरा पड़ा है। भाषा चमत्कार के कारण यह इतना सरस बन गया है। यह सूरदास के मनोभावों के वर्णन और भाषा की सामर्थ्य का परिचायक है। सूरदास ने कृष्ण के माध्यम से गोपियों के ह्रदय में सगुण भक्ति का जो वास दिखाया है उसमें गोपियाँ उद्धव के समझाने के बावजूद भी निर्गुण के स्वरूप को समझने को तैयार ही नहीं हैं। उद्धव के बार-बार निर्गुण का उपदेश देने से ऊब कर वे कहती हैं -

निरगुन कौन देस को बासी।
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दे, बूझति साँचि न हाँसी।
को हे जनक, कौन है जननी, कौन नारि को दासी ?
कैसो बरन भेस है कैसो, किहिं रस मैं अभिलाषी ?
पावैगौ पुनि कियो आपनो, जो रे करैगौ गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो बावरौ, सूर सबै मति नासी। २९२

भ्रमरगीत प्रसंग में उद्धव ने गोपियों के विविध मनोभावों का चित्रण किया है। कृष्ण वियोग में गोपियों की मानसिक स्थिति ऐसी हो गई है कि वह कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ सुनने को तैयार ही नहीं हैं। उद्धव के बार बार समझाने पर वे कभी क्रोधित होती हैं, कभी उद्धव को अपनी कटूक्तियों से आहत करती हैं, कभी वे प्रार्थना करने लगती हैं। उनका अपने मन पर जैसे कोई वश ही नहीं है। वे उद्धव से निर्गुण योग के प्रति असमर्थता जाहिर करते हुए तथा अपनी दशा का वर्णन करते हुए कहती हैं -

उधौ मन न भये दस बीस।
एक हुतौ सो गयो स्याम संग, को अवराधै ईस।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारे नंद-नंदन बिनु और नहीं जगदीस।। २९९

अर्थात, उद्धव हमारे पास दस-बीस मन नहीं हैं, एक ही है जो श्याम के संग चला गया। अब तुम्हारे निर्गुण को कौन आराधे। कृष्ण के बिना हमारी इंद्रियाँ ऐसे शिथिल हो गई हैं जैसे बिना सिर को देह। इस आशा से ही शरीर में श्वास आती है कि कभी तो कृष्ण से मिल सकेंगे। फिर प्रार्थना के स्वर में उद्धव से कहती हैं कि तुम तो कृष्ण के मित्र हो और समस्त योग के स्वामी हो लेकिन हमारे पास कृष्ण के सिवाय और कोई आराध्य नहीं है।

सूरदास का भ्रमरगीत विप्रलम्भ श्रृंगार से परिपूर्ण रचना है। इसमें गोपियों की अत्यंत गहन वियोग दशा का वर्णन है। श्रीकृष्ण की बाललीलाओं के साथ पलते-बढ़ते उन्होंने यौवन प्राप्त किया है। इसके बाद श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं, जहाँ कंस का वध कर वे राजकाज में व्यस्त हो जाते हैं और लौटकर ब्रज नहीं आ पाते। श्रीकृष्ण की इस स्थिति के

कारण पूरे ब्रज में वियोग का दंश प्राप्त है। उसी वियोग दशा का वर्णन अभूतपूर्व ढंग से सूरदास ने अपने काव्य में किया है। विरह की यह स्थिति कृष्ण, गोप-गोपियों, नंद-यशोदा सहित ब्रज के पूरे प्राकृतिक वातावरण में व्याप्त है। भ्रमरगीत में सूर ने विरह की समस्त दशाओं का सचित्र वर्णन किया है। भ्रमरगीत के अंतर्गत प्रकृति का उद्दीपन विभाव रूप में वर्णन प्रमुख है। जो प्रकृति कृष्ण की उपस्थिति में उनको शांति और शीतलता प्रदान करती थी, वही उन्हें चिढ़ाती और जलाती सी प्रतीत होती है -

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब वे लता लगति तन सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल-फूलनि अलि गुंजै।

जहाँ एक तरफ प्रकृति का नैकट्य समस्त ब्रज को व्यथित करता है, कृष्ण के विरह की याद दिलाता है, वहीं स्वयं प्रकृति भी उनके विरह में अत्यंत व्याकुल है। कालिंदी अर्थात यमुना भी उनके विरह में काली पड़ गई है अर्थात उनके विरह में जल गई है। समस्त ब्रजमंडल कृष्ण के विरह ताप से तप्त है -

देखियत कालिन्दी अति कारी।
अहौ पथिक कहियौ उन हरि सौं, भयी बिरह जुर जारी।
....
सूरदास-प्रभु जो जमुना गति, सो गति भयी हमारी।

भ्रमरगीत के माध्यम से सूरदास ने जो विरह-वर्णन किया है, उसमें विरह की समस्त काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ सम्मिलित हो गई हैं। यह स्वाभाविक ढंग से हुआ है या सूरदास को शास्त्रीय ज्ञान था, यह तो नहीं कह सकते परंतु काव्यशास्त्र में विरह की जिन ग्यारह दशाओं का उल्लेख किया गया है, वे सभी भ्रमरगीत के अंतर्गत देखी जा सकती हैं। यह ग्यारह दशाएँ हैं - अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्छा और मरण। इन सभी का उत्कृट चित्रण सूरदास के भ्रमरगीत में मिलता है। बिरह -दशाओं के संदर्भ में सूरदास के काव्य की व्यापकता का उल्लेख करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि, "न जाने कितनी प्रकार की मानसिक दशाएँ ऐसी मिलेंगी, जिनके नामकरण तक नहीं हुए हैं।" आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन से सूरदास की सर्जन व्यापकता का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। वास्तव में भ्रमरगीत में सूरदास जी ने विप्रलम्भ-श्रृंगार का अत्यंत उत्कृष्ट वर्णन किया है। पूरे हिंदी साहित्य में इसकी जोड़ का कोई दूसरा उदाहरण ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता है। कई समीक्षक विरह को आधार मानकर सूरदास की तुलना जायसी और मीरा आदि से करते हैं परंतु इनमें से कोई भी विरह का उतना संपूर्ण चित्र नहीं खींच पाया है जितना कि सूरदास ने किया है। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि, "वियोग की जितनी अंतर्दशाएँ हो सकती हैं, जितने ढंगों से इन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।" सूरदास का विरह-वर्णन रूदन मात्र नहीं है बल्कि उन्होंने उसे व्यंग्य-विनोद पूर्ण बना दिया है। पूरे हिंदी साहित्य में यह दशा एक मात्र उन्हीं के सामर्थ्य की बात है। सूरदास का विरह वर्णन मात्र परंपरा का अनुकरण नहीं है अर्थात उसमें केवल नारियों को ही व्यथित नहीं दिखाया गया है बल्कि पुरुष को भी उस विरह से तप्त दिखाया गया है। इस विरह से संपूर्ण विश्व व्यथित है। निसंदेह सूरदास का भ्रमरगीत हिन्दी साहित्य की अमूल्य संपत्ति है।

१.६ सूरदास की भाषा-शैली

महाकवि सूरदास ने ब्रजभाषा में अपनी काव्य रचना की है। ब्रज-क्षेत्र का वासी होने के कारण यह स्वाभाविक भी था। सूरदास ने अपनी भाषा को जनभाषा कहा है। सूरदास के साहित्य में आकर ही पहली बार ब्रजभाषा इतने समर्थ ढंग से अभिव्यक्त हो सकी थी। सूरदास से पहले भी ब्रजभाषा का प्रयोग हमें साहित्य में देखने को मिलता है परंतु जितना व्यवस्थित ढंग से वह सूरदास में देखने को मिलता है, उनके पहले यह दुर्लभ है। सूरदास द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा सानुप्रास, भावों के सजीव वर्णन में समर्थ, सहज, सरल, आडंबरहीन और ह्रदय को स्पर्श करने वाली है। उपर्युक्त विश्लेषण में दिए गए उनके उदाहरण इस बात का प्रमाण हैं। उनकी भाषा के संबंध में डॉ. हरबंसलाल शर्मा कहते हैं कि, "जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता और सजीवता सूर की भाषा में है, इसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने सर्वप्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया।"

सूरदास के काव्य में ब्रजभाषा तो प्रधान है ही, इसके साथ-साथ संस्कृत, तत्सम, तद्भव, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द, अन्य देशी भाषाओं के शब्द साथ ही विदेशी भाषाओं और देशज शब्द भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इन सभी अलग-अलग भाषाओं और बोलियों के जो शब्द उनकी भाषा में सम्मिलित हो गए हैं, वे सहज रूप से आए हैं संस्कृत तत्सम शब्दों में दधि, स्वाद, रसना, रंक, रस, अविगत, आदि, अनंत, अविनाशी, आधरामृत, पीतांबर, महोत्सव आदि प्रमुख हैं। सूरदास के काव्य में तद्भव शब्दों की संख्या तत्सम शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक है। यह तद्भव शब्द पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि की प्रवृत्तियों के अनुसार परिवर्तित होते-होते सर्वथा बदले रूप में ब्रजभाषा तक आए थे। ऐसे शब्दों में अंगूठा, अंधियारी, अकारथ, अचरज, हिम आदि प्रमुख हैं। पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के मूलशब्द भी सूरदास के काव्य में देखने को मिलते हैं जोकि ऐसे शब्द थे जिनकी प्रकृति ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल थी। ऐसे शब्दों में असवार, उसर, केहरी, गाहक, कटिक, सायर आदि प्रमुख हैं। विदेशी भाषाओं के शब्दों के अंतर्गत अरबी के अबीर, जवाब, खसम; फारसी के अचार, गुमान, अवाज; तुर्की के साहिबी, गुंजाइस, दगाबाज, कुतवाल आदि। इन विदेशी भाषा के शब्दों में अरबी-फारसी के शब्द ही सर्वाधिक हैं। देसी भाषाओं जैसे पंजाबी, गुजराती आदि के शब्दों का प्रयोग भी नगण्य रूप में यत्र-तत्र मिलता है।

शब्द-भंडार की दृष्टि से सूर की भाषा अत्यंत समृद्ध है। भाषा में वैदग्ध्यता और वाकचातुर्य की दृष्टि से उन्होंने अपने पदों में मुहावरे और कहावतें का भी बड़ा सुंदर प्रयोग किया है। इस प्रयोग से भाषा व्यंजनात्मक बनी है और उसकी प्रभावोत्पादकता में वृध्दि हुई है। उन्होंने लोक-प्रचलित उपमाओं, मुहावरों आदि का सहारा लेकर अपनी भाषा को इच्छित भावों की अभिव्यक्ति हेतु सर्वथा उपयुक्त बना दिया है। उनकी भाषा लोक प्रचलित भाषा है अतः उसका शास्त्रीय नियमों-उपनियमों की दृष्टि से मूल्यांकन करना उचित नहीं है। आम जनता की भाषा सदा ही इन नियमों के विरुद्ध चलती आई है परंतु सूर की भाषा में जो लोकचेतना अभिव्यक्त हुई है, उससे उनका काव्य और समृद्ध हुआ है।

सूरदास ने अपनी काव्य रचना पदों के रुप में की है, इसीलिए उनका काव्य संगीतमय हो उठा है। अन्य छंदों की अपेक्षा पद रूप में रचना करके रचनाकार अपने पदों को गेय बना देता है। सूरदास की पद रचना की शैली ऐसी है कि राग और ताल का समन्वय अद्भुत रूप से प्रकट होता है। उनके पदों में जो स्वाभाविकता और लालित्य दिखाई देता है वह, भक्तिकाल के अन्य कवियों में देखने को नहीं मिलता। सूरदास का काव्य इसलिए भी और अधिक रोचक हो जाता है

क्योंकि उन्होंने पद रचना एक कथा के अनुसार की है, जिसे नैरन्तर्य में संगीतबद्ध करके पढ़ने या गाने में एक अलग ही आनंद की प्रतीति होती है। भजन-कीर्तन करने वाले गायक इसी कारण सूरदास के पदों को गाना पसंद करते हैं। सूरदास के पद इसलिए और भी प्रभावी हो गए हैं कि उनमें रुक्ष दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण नहीं किया गया बल्कि कथारूप में कृष्ण लीलाओं का गान किया गया है। सूरदास के विनय संबंधी पद, वात्सल्य संबंधी पद और भ्रमरगीत इस दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय हैं। संपूर्ण सूरसागर यह तीनों आत्मा के समान व्याप्त हैं। इन तीनों प्रकरणों की रचना पद रूप में ही हुई है और जिस सहज, सरल ढंग से विभिन्न मनोभावों और वृत्तियों का चित्रण किया गया है, वह प्रत्येक पाठ या श्रोता को आनन्दातिरेक से भर देता है। सूर के पद प्रसाद-गुण संपन्न हैं। वे अपने पदों में जो कुछ भी कहना चाहते हैं, वह बिल्कुल स्पष्ट ढंग से कह देते हैं। अर्थ की परतें सहज ही पाठक या श्रोता के मन में खुल जाती हैं और मनोभावों का चित्रण पाठक को स्पष्ट रूप से समझ में आता है। सूरदास का पूरा काव्य इस विशेषता का उदाहरण है। अनेकार्थता सूर के पदों में कहीं भी दिखाई नहीं देती। सूर ने जहाँ कहीं, जो कुछ भी कहा, सब आडंबरविहीन, सरल, प्रसाद-गुण पूर्ण, सरस शब्दावली में ही कहा। यद्यपि उनमें पांडित्य की कोई कमी नहीं थी परंतु यह उनकी शैली थी। इतने साफ और स्पष्ट ढंग से अपने अर्थ को संप्रेषित करना कम ही कवियों में देखने को मिलता है। सूर के काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगार, हास्य, अद्भुत आदि रसों का सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है और सूर के वात्सल्य वर्णन के कारण ही आधुनिक काल में वत्सल रस की स्थापना हुई। यह सूर के महाकवि रूप का परिचय है।

१.७ सारांश

सारांशतः सूरदास हिन्दी की कृष्णभक्ति काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं। उनकी रचना 'सूरसागर' सगुण भक्तिधारा की अनमोल रचना है, जिसमें उन्होंने सगुण भक्ति के महत्त्व स्थापन के साथ-साथ निर्गुण भक्ति की निरर्थकता को स्पष्ट किया है। पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास में इतनी भावापूरित रचना मिल पाना अत्यंत दुष्कर है। इस ग्रंथ में सूरदास के वात्सल्य संबंधी पद और भ्रमरगीत उन्हें विश्व साहित्य में बेजोड़ बनाते हैं। उनके काव्य में शांत रस, विप्रलम्भ श्रृंगार रस और वात्सल्य रस की प्रधानता है, गौण रूप में अन्य समस्त रसों से संबंधित पदों की रचना भी उनके द्वारा की गई है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं।... इन क्षेत्रों का कोना-कोना वह झाँक आए।" आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह कथन इस क्षेत्र में उनकी व्यापकता और महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति को व्यक्त करता है। यद्यपि सूरसागर का आधार श्रीमद्भागवत का वर्णन है परंतु सूरदास ने इसे अपनी मौलिकता से और समृद्धि प्रदान की है। उनके पद प्रसाद गुण संपन्न एवं माधुर्य भाव से ओतप्रोत हैं। उनके काव्य में जितनी सहजता और भावुकता है उतनी ही वाग्वैदग्ध्यता भी है। इससे उनका काव्य और भी प्रभावोत्पादक हो जाता है। सूरसागर के अंतर्गत भ्रमरगीत, सूरदास के सर्वाधिक उज्जवल पक्षों में से एक है। भ्रमरगीत के अंतर्गत किया गया विरह वर्णन हिंदी के सर्वश्रेष्ठ वर्णनों में से एक है। उनका काव्य सहज भावों की अभिव्यक्ति है, उसमें किसी भी तरह के अलंकार प्रदर्शन को उन्होंने महत्त्व नहीं दिया है। सहज ढंग से जो अलंकार सम्मिलित हो गए हैं, वही उनके काव्य में देखने को मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से सूरदास की भाषा अत्यंत सरल, सहज और आमजन के बीच की भाषा है। इस भाषा से ही उन्होंने सर्वश्रेष्ठ साहित्य की रचना की है, ब्रजभाषा को पहली बार साहित्य के क्षेत्र में इतने समर्थ रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय उन्हीं को है। आगे चलकर काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा का योगदान किसी से छिपा नहीं है, परंतु उसकी

सामर्थ्य को पहली बार प्रकट करने का श्रेय सूरदास जी को ही है। सूरदास के काव्य का आने वाले कवियों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अनेक कृष्णभक्त कवियों ने उनकी प्रेरणा से काव्य रचना की। भ्रमरगीत की उनके द्वारा शुरु की गई परंपरा आधुनिक काल तक दिखाई पड़ती है। इस तरह सूरदास एक युग प्रवर्तक कवि सिद्ध होते हैं।

१.८ व्याख्या - उदाहरण

१)

पथिक! संदेसो कहियो जाय।
आवैंगे हम दोनों भैया, मैया जनि अकुलाय।।
याको बिलग बहुत हम मान्यो जो कहि पठ्यो धाय।
कहँ लौं कीर्ति मानिये तुम्हरी बड़ो कियो पय प्याय।।
कहियो जाय नन्दबाबा सों, अरु गहि पकरयो पाय।
दोऊ दुखी होन नहिं पावहिं धूमरि धौरी गाय।।
यद्यपि मथुरा बिभव बहुत है तुम बिन कछु न सुहाय।
सूरदास ब्रजवासी लोगनि भेंटत ह्रदय जुड़ाय।।

प्रसंग - कृष्ण के कहने पर उद्धव ब्रज जाने के लिए तैयार हो गए हैं। ऐसे में कृष्ण उन्हें समझा रहे हैं कि ब्रज में जाकर तुम हमारी ओर से क्या-क्या कहना।

व्याख्या - कृष्ण उद्धव को समझाते हुए कहते हैं कि पथिक (उद्धव) तुम ब्रज में जाकर हमारा यह संदेश कह देना कि हम दोनों भाई जल्दी ही वहाँ आएंगे। माता यशोदा से कहना कि वे तनिक भी व्याकुल न हो। उनसे यह भी कहना कि हमने इस बात का बहुत बुरा माना है कि उन्होंने देवकी के पास संदेश भेजते समय अपने को धाय कहा है। माँ यशोदा से कहना कि तुम्हारी कीर्ति का कहाँ तक वर्णन करें। वह तुम ही हो जिसने दूध पिला-पिला कर हमें इतना बड़ा किया है। हे उद्धव तुम नंद बाबा के चरण पकड़कर अर्थात उन्हें उचित सम्मान देकर कहना कि हमारी दोनों काली और सफेद गाय दुखी न होने पावे अर्थात उनका ख्याल रखना और यह भी कहना कि यद्यपि इस मथुरा नगरी में पर्याप्त वैभव है किंतु तुम्हारे बिना यह जरा भी अच्छा नहीं लगता। एक तरफ यह वैभव है और दूसरी ओर आप सबका अपार प्रेम और स्नेह है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण यह कहना चाहते हैं कि बृजवासी लोगों से मिलकर ही हमारे ह्रदय को शीतलता मिलेगी अर्थात जितने व्याकुल आप लोग हमसे मिलने के लिए हैं उतने ही व्याकुल हम भी आप सब से मिलने के लिए हैं।

विशेष - किस पद में भाई शब्द में कृष्ण की समस्त वेदना आक्रोश और पीड़ा उपालंभ के माध्यम से किसकी जीत हुई है कृष्ण को ब्रज की कितनी चिंता है यह इस पद से प्रकट होता है। ब्रज के सहज ग्रामीण जीवन के प्रति उनका मोह स्पष्ट होता है यद्यपि गोपी प्रसंग के कारण भ्रमरगीत अत्यंत रुचिकर बन गया है परंतु यह सूरदास की विशेषता है कि उन्होंने कृष्ण के वियोग का चित्रण भी भ्रमरगीत में किया है यह पद कृष्ण के वियोग को प्रकट करता है।

२)

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारें।।
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ, उर-कपोल भए कारे।

कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी! उर-बिच बहत पनारे।।
सूरदास प्रभु अम्बु बढ्यो है, गोकुल लेहु उबारे।
कहँ लों कहौं स्यामघन सुन्दर बिकल होत अति भारे।।

प्रसंग - अक्रूर के साथ कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद गोपियों की जो दशा है, उसका वर्णन इस पद में किया गया है।

व्याख्या - गोपियाँ अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कह रही हैं कि नेत्र रात-दिन बरसते रहते हैं। जब से कृष्ण गए तब से हम पर सदा वर्षा ऋतु छाई रहती है। आँखों में अंजन दिन रात नहीं रहता जिससे हाथ तथा कपोल काले हो गए हैं। चोली का वस्त्र कभी सूखता नहीं है क्योंकि उनके बीच से नाला बहता है, लगता है जैसे सारा शरीर अश्रु जल हो गया है। जो पल भरी क्रोध करने पर बहने से नहीं रोका जा सकता। सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु यही पश्चाताप है कि आपने गोकुल को क्यों भुला दिया।

विशेष - इस पद में सूरदास जी ने वियोग श्रृंगार का अत्यंत सुंदर और ह्रदयद्रावक चित्रण किया है।

१.९ लघुत्तरीयय प्रश्न

१) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सुर का जन्म स्थान निम्न में से किसे माना है?
२) सूरदास के दीक्षा-गुरु माने जाते हैं -
३) सूरदास को किस आदिकालीन कवि का वंशज माना जाता है?
४) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास के प्रामाणिक ग्रंथो की संख्या कितनी मानी है?
५) 'साहित्य लहरी' के रचयिता हैं।

१.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) कृष्णकाव्य धारा में सूरदास के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
२) सूरदास की भक्ति के संदर्भ में अपने विचार प्रकट कीजिए।
३) सूरदास कृत भ्रमरगीत के काव्य-सौंदर्य को सोदाहरण समझाइए।
४) भ्रमरगीत परंपरा में सूरदास के भ्रमरगीत के महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

१.११ संदर्भ ग्रंथ

१) भ्रमरगीत सार - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
२) सूरदास और भ्रमरगीतसार - डॉ. किशोरी लाल
३) सूरसागर सार - संपादक डॉ. धीरेंद्र वर्मा
४) सूरदास - संपादक हरबंस लाल शर्मा

❖❖❖❖

२

गोस्वामी तुलसीदास - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इकाई की रूपरेखा :

२.० इकाई का उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व

- २.२.१ तुलसीदास की जन्म-तिथि
- २.२.२ तुलसीदास के जन्म-स्थान
- २.२.३ तुलसीदास के माता-पिता
- २.२.४ तुलसीदास की जाति-पाँति
- २.२.५ तुलसीदास दास का नाम
- २.२.६ तुलसीदास की बाल्यावस्था
- २.२.७ तुलसीदास के गुरु
- २.२.८ तुलसीदास का विवाह
- २.२.९ तुलसीदास का अवसान

२.३ गोस्वामी तुलसीदास का कृतित्व

२.४ सारांश

२.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.६ लघुत्तरीय प्रश्न

२.७ संदर्भ ग्रंथ

२.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषय वस्तु के अध्ययन से आपको निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश निहित है -

- गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व की जानकारी देना
- गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व से परिचय कराना।

२.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य और भारतीय धर्मसाधना में गोस्वामी तुलसीदास का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने वैष्णव भक्ति को लोकसंग्रह और मर्यादावाद से जोड़कर हिन्दु समाज को एक नयी दिशा

munotes.in

दी। शैव, स्मार्त और वैष्णव सम्प्रदायों के पारस्परिक वैमनस्य को दूर कर समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया और रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत कर सामाजिक और राजनैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की। इसी कारण भारतीय समाज में तुलसीदास को जो सम्मान मिला, वह अन्य किसी कवि के हिस्से में नहीं आया। नाभादास ने उन्हें भक्तिकाल का वाल्मिकी कहा, तो फ्रेन्च विद्वान जार्ज ग्रियर्सन ने उन्हें मध्यकाल का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति स्वीकार करते हुए उन्हे 'महात्मा बुद्ध के बाद भारत वर्ष के सबसे बड़े लोकनायक' की संज्ञा से अभिहित किया। गोस्वामी तुलसीदास का साहित्य अपने समय की मानवीय एवं सामाजिक समस्याओं से जुझता है। उन्होंने अपनें समय में समाज की धड़कन को पहचाना, समस्याओं की गहराई से परीक्षा की और समाधान प्रस्तुत किया। इसीकारण उनका साहित्य अत्यन्त श्रेष्ठ एवं मूल्यवान है।

भारत के मूर्धन्य सन्तो एवं भक्त कवियों के सम्बन्ध में एक दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना यह रही है कि उनके जीवन से सम्बन्ध तथ्यों पर उत्तरवर्ती लेखकों को प्रायः केवल अटकलों का ही सहारा लेना पड़ता है। इन भक्तों एवं सन्तों द्वारा स्वयं के बारे में कुछ स्पष्ट संकेत न करने के कारण आज का समीक्षक अन्तः साक्ष्यों से जुटाये गये प्रभावों के आधार पर अपनी धारणा बनाता है और उनके साँचे में उन साहित्यकारों को फिट करता है। भले ही उनकी वे धारणाएँ यथार्थ से दूर हो। यह स्थिति महाकवि तुलसीदास के सन्दर्भ में भी है।

२.२ गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के दो साधन हैं - (अ) अन्तःसाक्ष्य और (ब) बहिःसाक्ष्य। इन्हीं के आधार पर हम संक्षेप में तुलसीदास की जीवन-रेखा को जान सकते हैं।

अ) अन्तःसाक्ष्य : अन्तःसाक्ष्य रूप जीवन-वृत्त सम्बन्धी आत्मोल्लेख रामचरितमानस, विनय पत्रिका, कवितावली तथा दोहावली में ही प्रायः मिलते है।

ब) बहिःसाक्ष्य : बहिःसाक्ष्य रूप प्राप्त सामग्री को दो वर्गों में रखा जा सकता है। (त) प्राचीन सामग्री और (थ) अर्वाचीन सामग्री।

त) प्राचीन सामग्री : प्राचीन सामग्री के स्त्रोत निम्नलिखित हैं -
क) भक्तों तथा सन्तों के उल्लेख - गोस्वामी तुलसीदास के बारे में भक्तों तथा सन्तों द्वारा किये गये उल्लेख पुस्तक रूप में भी हैं और छुट पुट रूप में प्रसंगवश भी। एकाध ग्रन्थ को छोड़कर अधिकांश सामग्री संदिग्ध है, साम्प्रदायिक-निष्ठा तथा भक्ति महात्म्य से अनुप्रणित है। ये मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित है - १) नाभादास का 'भक्तमाल', २) प्रियादास की टीका, ३) वैष्णवदास की टिप्पणी, ४) नागरीदास की 'पद प्रसंग माला' तथा 'तीर्थानन्द', ५) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, ६) गोसाई - चरित्र, ७) वैणीमाधव दास का 'मूल गोसाई चरित', ८) रघुबरदास का 'तुलसी चरित', ९) तुलसी साहब का आत्मचरित, १०) मोरोपंत का 'तुलसी चरित', ११) भविष्य पुराण तथा १२) मोहन साई का एक गीत।

ख) स्थानीय सामग्री : काशी, अयोध्या, राजापुर तथा सोरों से प्राप्त सामग्री। इस सन्दर्भ में सोरों से प्राप्त सामग्री जितनी अधिक है, उतनी विवादस्पद भी।

ग) जनश्रुतियाँ : गोस्वामी तुलसीदास के जीवन सम्बन्धी कई प्रकार की जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। अधिकांश में तुलसीदास की भक्ति तथा अलौकिक शक्ति अर्थात् चमत्कारों का ही परिचय मिलता है। कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों, भक्तों तथा कवियों (जहांगीर, रहीम, टोडरमल, नन्ददास, मीरां, केशवदास) से भेंट या पत्र-व्यवहार आदि के सम्बन्ध में भी हैं। कुछ का सम्बन्ध तुलसी के जीवन हैं जैसे रत्नावली के कथन 'लाज न लागत आपको' से तुलसी का बैराग तुलसी को 'गोद लिये तुलसी का फिरना' आदि। अधिकांश जनश्रुतियाँ उपर दिए ग्रन्थों में निर्दिष्ट हैं।

थ) अर्वाचीन (आधुनिक) सामग्री : तुलसी के जीवन-वृत्त से सम्बन्धि आधुनिक सामग्री के भी तीन स्रोत हैं -

य) विदेशी विद्वानों के मत - इनमें विल्सन, गार्सा द तासी, जार्ज ग्रियर्सन, ग्राउस, ग्रीब्स, टेसीटरी आदि विद्वानों के मत उल्लेखनीय हैं। इनमें भी विशेष उल्लेखनीय विद्वान एफ.एस. ग्राउस हैं। जिन्होंने अग्रेजी में रामचरित मानस का अनुवाद किया। दूसरे विद्वान डॉ. ग्रियर्सन हैं जिन्होंने वास्तव में तुलसीदास के जीवन और साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुसंधान का सूत्रपात किया।

र) तुलसी साहित्य के सम्पादक : इस वर्ग में वे सभी विद्वान संपादक आते हैं जिन्होंने रामचरित मानस तथा अन्य रचनाओं का समय-समय पर सम्पादन करते हुए तुलसीदास सम्बन्धी अध्ययन को अग्रसर करने में विशेष योगदान दिया है।

ल) तुलसी साहित्य के आलोचक : भारतीय आलोचकों में सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' में सं. १९३४ में बेनीमाधव के 'गुसाई चरित्र' के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला। इसके उपरान्त इस विषय पर आधारित समीक्षाएँ नई इतिहास ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं में निकली हैं तथा ग्रंथाकार रूप में भी प्राप्त है।

तुलसीदास का जीवन-वृत्त : अन्तःसाक्ष्य तथा बहिःसाक्ष्य के आधार पर तुलसीदास का जीवन-वृत्त निश्चित करने के लिए यद्यपि आधारभूत सामग्री की कमी नहीं हैं। किन्तु फिर भी एक सुनिश्चित जीवन-वृत्त देना सम्भव नहीं हो पाता है, क्योंकि राजापुर और सोरों के आग्रह से अनुप्रेरित ऐसी सामग्री प्रस्तुत की गई है कि जिसके द्वारा मतैक्य जाना कठिन हैं।

२.२.१ तुलसीदास की जन्म-तिथि :

अन्तः साक्ष्य में प्रत्यक्ष रूप से तुलसीदास के जन्म-संवत् का जन्म-तिथि का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु इस सम्बन्ध में दो विचार-सूत्र उपलब्ध होते हैं। एक 'रामचरित मानस' से तथा दूसरा तुलसीदास की तथाकथित रचना 'राममुक्तावली' से। रामचरित मानस में कवि तुलसी ने इस रचना के आरम्भकाल का उल्लेख किया है - 'संवत सोर सौ एकत्तीसा करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।' यदि मानस की रचना ४० वर्ष की अवस्था में कल्पित की जाए तो तुलसी का जन्मकाल सं. १५९० के लगभग अनुमानित किया जा सकता है। दूसरा अनुमान 'राममुक्तावली' देती है। इस ग्रन्थ में एक पंक्ति है - "पवन तनय मो सन कहयौ पाँच बीस अरु बीस।" इस पंक्ति से 'पाँच बीस' अर्थात् सौ और बीस अर्थात एक सौ बीस (१२०) वर्ष की आयु का अर्थ लगाकर तथा संवत् १६८० को कवि का निधनकाल मानते हुए इस आधार पर तुलसीदास का जन्म-काल संवत् १५६० निश्चित किया जा सकता है। किन्तु एक तो रचना -

शैली, छन्द योजना तथा विचारधारा की दृष्टि से 'राममुक्तावली' तुलसी की रचना ही नहीं मानी जाती तथा दूसरे संवत १५६० को जन्मकाल मानने से मानस की रचना इकहत्तर वर्ष की अवस्था में माननी पड़े भी तथा उनकी एक अन्य रचना 'पंचायतनामा' (जिसका समय सं. १६६९) एक सौ नौ वर्ष की अवस्था में, जो किसी प्रकार भी मान्य नहीं है। अतएवं अन्तः साक्ष्य तुलसीदास के जन्म संवत् तथा जन्म-तिथि के सुनिश्चित निर्धारण में कोई विशेष सहायता नहीं देता।

'मूल गुसाई-चरित' में तुलसीदास के जन्म-काल का उल्लेख इस प्रकार है - "पन्द्रह सौ चौवन वर्ष कालिन्दी के तीर, सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ सरीर।" इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास का जन्म श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को संवत् १५५४ में यमुना नदी के किनारे पर हुआ था। संवत् १९६१ में विरचित 'मानस मयंक' की टीका में भी पंडित शिवलाल पाठक ने इसी जन्म तिथि का उल्लेख किया है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'मूल गोसाई चरित' को प्रामाणिक मानते हुए इस जन्म-तिथि की पुष्टि की है, किन्तु डॉ. माताप्रसाद गुप्त, श्री रामनरेश त्रिपाठी आदि विद्वानों के अनुसार यह तिथि गणना के अनुसार ठीक नही ठहरती।

डॉ. ग्रियर्सन ने 'घट रामायण' के आधार पर तुलसीदास की जन्म तिथि संवत् १५८९ मानी है। उनका कहना है - "सबसे अधिक विश्वस्त विवरणों से यह बात प्रकट होती है कि कवि का जन्म सं. १५८९ में हुआ था।" इसका समर्थन तीनों ओर से हुआ है। एक तो डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने भी इसका समर्थन किहा है। दूसरी ओर मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी पंडित तथा द्विवेदी भी भक्तों की जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ मानते हैं। तीसरी ओर संवत् १८२० से १९०० में वर्तमान तुलसी साहिब ने अपने चरित्र में जो 'घट रामायण' में संकलित है, तुलसीदास का जन्म सं. १५८९, भाद्रपद शुक्ल ११, मंगलवार बताया है। यह तिथि विगत संवत् वर्ष प्रणाली पर गणना करने से शुद्ध ठहरती है। इस तरह तुलसीदास की जन्म-तिथि संवत् १५८९ मानना सर्वथा उचित है।

२.२.२ तुलसीदास के जन्म-स्थान :

तुलसी के जन्मस्थान को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इस सम्बन्ध में हाजीपुर, तारी, सोरो तथा राजापुर - चार स्थानों के नाम सामने आये हैं। हाजीपुर का उल्लेख विल्सन द्वारा हुआ था, किंतु पुष्ट प्रमाण के अभाव में इसे मान्यता नहीं मिली। तारी का उल्लेख डॉ. ग्रियर्सन ने किया था। इस संबंध में डॉ. ग्रियर्सन का आधार तो सम्भवतः जनश्रुति थी किन्तु बाबू शिवनन्दन सहाय ने अपनी रचना 'गोस्वामी तुलसीदास' में इनके पक्ष में श्री. सीताराम शरण भगवान प्रसाद कृत भक्तमाल की टीका की चर्चा करते हुए यह स्थापित किया है कि तारी ही में गोस्वामीजी का जन्म हुआ था। अयोध्या निवासी श्री रामसरंगमणि जी ने भी 'कवित्त रामायण' की टीका में तारी को ही जन्म स्थान माना है। कुछ विद्वान रचेरों, जिला एटा (उत्तर प्रदेश) में तुलसी का जन्मस्थान होने का दावा करते हैं, परंतु वस्तुस्थिति यह है कि इस पक्ष में जो प्रमाण दिये जा रहे हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर माना जाता है, जो बाँदा जिले (उत्तर प्रदेश) में है। आज भी वहाँ तुलसीदास के रहने का स्थान है, तुलसी की मूर्ति है, उन्हीं के हाथ की लिखी बजाई जानेवाली अयोध्याकाण्ड भी एक प्रति है। तुलसीदास द्वारा संस्थापित संकटमोचन हनुमान की एक मूर्ति है, तुलसीदास के शिष्य गणपति उपाध्याय का कुल है जिन्हें

आज भी कर आदि से कुछ मुआफियाँ, कुछ राजकीय सुविधाएँ प्राप्त है और इनकी पुष्टि के लिए उनके पास बादशाही फरमान तथा पन्ना के हिन्दु राजा के पट्टे हैं। राजापुर से प्राप्त इस सामग्री से स्पष्ट होता है कि राजापुर से ही तुलसी का जन्मस्थान है। साथ ही 'गोसाई चरित' के बाबा बेणीमाधव रास, शिवसिंह सेंगर, तुलसी साहिब, पं. रामगुलाम द्विवेदी विद्वानों का मत है कि तुलसीदास का जन्मस्थान राजापुर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामबहोरी शुक्ल, पं. महादेव पाण्डेय, श्री. अयोध्याप्रसाद पाण्डेय तथा डॉ. रामकुमार वर्मा आदि विद्वानों ने भी इस मत का समर्थन किया है।

२.२.३ तुलसीदास के माता-पिता :

जनश्रुति के अनुसार तुलसीदासजी की माता का नाम हुलसी बताया जाता है। अन्त:साक्ष्य के रूप में मानस के बालकाण्ड में राम महिमा की चर्चा करते हुए गोस्वामीजी ने कहा है - "रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी, तुलसीदास हित हिय हुलसी सी।" इन पंक्तियों का अर्थ भी टिकाकारों ने इसी रूप में लिया है। अन्यथा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि तुलसी इस शब्द-प्रयोग में इस अर्थ को व्यंजित करना चाहते थे या नहीं। माता के नाम के लिए रहीम का दोहा तो प्रसिद्ध है ही -

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय सब चाहति अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय।"

तुलसीदास के पिता के नाम को लेकर अन्त:साक्ष्य तो मौन है, किन्तु 'गोसाई चरित' के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था। डॉ. ग्रियर्सन ने 'इंडियन ऐंटीक्वेरी' में तुलसी के परिवार का परिचय देनेवाले तीन दोहे दिये हैं, जो इस प्रकार हैं -

"दूबे आत्मा राम है, पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन कान।।"

"प्रल्हाद उधारन नाम है, गुरु का सुनिए साध।
प्रकट नाम नहीं कहत जो, कहत होय अपराध।।"

"दीन बन्धु पाठक कहत, ससुर नाम सब कोई।
रत्नावलि तिय नाम है, सुत तारक गत होइ।।"

२.२.४ तुलसीदास की जाति-पाँति :

प्रायः यह निर्विवाद स्वीकार किया जाता है कि तुलसीदास जाति के ब्राह्मण थे। अत:साक्ष्य रूप में तुलसीदास ने अपने आपको 'विनय पत्रिका' में सुकुल अर्थात् उत्तम कुल जन्मा कहा है, -

"दियो सुकुल जन्म सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।"

अब केवल यह निश्चित करना शेष रह जाता है कि गोस्वामी जी की उपजाति क्या थी। डॉ. ग्रियर्सन ने तुलसीदास को सरयूपारीण ब्राह्मण माना है, कान्यकुब्ज नहीं। क्योंकि कान्यकुब्ज ब्राह्मण दान लेना तथा भिक्षा माँगना गर्हित मानते है। सोरों का मत है कि तुलसी सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनका गोत्र शुक्ल था। अपने पक्ष में वे 'दो सौ बावन्न वैष्णवन की वार्ता' में नन्ददास का प्रसंग, विनय-पत्रिका में 'सुकुल' का प्रयोग तथा काशी में तुलसी का अपनी जाति-पाँति न बताना आदि के तर्क देते हैं।

मिश्र बन्धुओं ने सरयूपारीण ब्राह्मणों तथा कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के पाठकों के साथ विवाह सम्बन्धों की खोज करते हुए 'हिन्दी कविरत्न' में यह मत प्रकट किया है कि तुलसीदास कान्यकुब्ज थे, सरयुपारीण नहीं। कान्यकुन्जों में पाठक द्विवेदियों से नीचे माने जाते हैं। अतएवं विवाह सम्बन्ध संभव है। सरयुपारीण द्विवेदी पाठकों से नीचे हैं अतएवं विवाह सम्बन्ध संभवतः नहीं होते। तुलसी द्विवेदी थे और उनका विवाह पाठकों से हुआ था। अतएवं इस प्रकार संभावना उनके कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने की है यद्यपि वे स्वीकार करते हैं कि राजापुर में जनश्रुति तुलसी को सरयुपारीण ब्राह्मण ही मानती हैं। ऊपर दिये हुए मतों का संक्षेप में विश्लेषण करें तो कहना होगा कि तुलसी की जाति ब्राह्मण थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु वह कैसे ब्राह्मण थे, यह विवाहस्पद है।

२.२.५ तुलसीदास दास का नाम :

अंतःसाक्ष्य एवं जनश्रुतियों के अनुसार इनका बचपन का नाम तुलसी नहीं, वरन् रामबोला था। इसका यह कारण दिया गया है कि ये 'राम' नाम अधिक लिया करते थे। कतिपय जीवनियों में तथा जनश्रुतियों में यह है कि तुलसी पाँच वर्ष के बालक के रूप में उत्पन्न हुए थे और जन्मते ही उन्होंने 'राम' नाम का उच्चारण किया। इसी से उन्हे 'रामबोला' नाम मिला। इनकी कृतियों में इसी नाम का उल्लेख मिलता है -

"राम को गुलाम नाम, रामबोला राख्यो राम।
काम यहै नाम द्वै हों कबहुँ कहत हौ।।" —— विनयपत्रिका

"साहिब सुजान जिन नाम हूँ को पच्छ कियो,
रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को।" —— कवितावली

इन कथनों से व्यक्त होता है कि उनका नाम रामबोला था, पर वह बचपन का नाम था। उसके पश्चात इनका प्रसिद्ध नाम तुलसीदास हो गया। इसका स्पष्ट संकेत 'बरवैरामायण', 'दोहावली' और 'कवितावली' के उत्तराकाण्ड के निम्नलिखित उद्धरणों में प्राप्त होता है -

"केहि गिनती महँ गिनती जस बन धास।
राम जपत भै तुलसी तुलसीदास।।"
"राम नाम को कल्पतरू कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो माँगते तुलसी तुलसीदास।।"

"नाम तुलसी पै भोड़े भाग सों कहायो दास,
कियो अंगीकर ऐसे बड़े दगाबाज को।"

२.२.६ तुलसीदास की बाल्यावस्था :

अन्तःसाक्ष्य में इस बात का पूरा प्रमाण है कि तुलसी की बाल्यावस्था बड़ी संकटग्रस्त थी। डॉ. नगेन्द्र का भी मानना है कि "गोस्वामीजी का बाल्यकाल अत्यन्त विषम परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था।" इस सन्दर्भ में तुलसी ने स्वयं लिखा है -

"मातु पिता जग जाइ तज्यौ विधिहू न लिखि कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि लगाई।।" —— कवितावली

"तनु जन्यौ कुटिल कीट ज्यौं तज्यौं मातु पिता हूँ।" —— विनयपत्रिका

"जननी जननी तज्यौं जनमि करम बिनु विधिहु सृज्यौ अवडेरे।" —— विनयपत्रिका

इस कथनों से यह स्पष्ट होता है कि इनके माता-पिता इनके जन्म के उपरान्त ही स्वर्गवासी हो गये थे। माता जन्मते ही और पिता भी संभवतः अभुक्तमूल में जन्म होने के कारण इनका त्याग कर थोड़े दिन बाद ही परलोकवासी हुए थे। इसके बाद इन्हें घर से निकाल दिया गया था।

इन वचनों के आधार पर यह जनश्रुति चल पड़ी कि गोस्वामी तुलसीदास अभुक्तमूल में उत्पन्न हुए थे, इसीलिए उनके माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया था। वे जब उत्पन्न हुए थे तब पाँच वर्ष के बालक के समान थे और उन्हें पूरे दाँत भी थे। वे रोए नहीं, केवल राम शब्द उनके मुँह से सुनाई पड़ा। बालक को राक्षस समझ पिता ने उसकी उपेक्षा की, लेकिन माता ने उसकी रक्षा के लिए उद्विग्न होकर उसे अपनी एक दासी चुनिया को पालने-पोसने को दिया। वह दासी उस बालक को लेकर अपने ससुराल चली गई। बालक के पाँच वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते चुनियादासी भी परलोकवासी बन गई और बालक रामबोला अनाथ होकर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश हो गया। सन्तों के प्रश्रय में जाने के पूर्व उन्हें द्वार-द्वार उदर-पोषण के लिए भीख माँगनी पड़ी। और जाति-कुजाति सबके टुकड़े खाने पड़े। इस दैन्य-दशा का चित्रण 'विनय पत्रिका' और 'कवितावली' में तुलसीदास ने स्वयं किया है -

'द्वार-द्वार दीनता वही काढ़ि रद परि पा हूँ'। ——— विनयपत्रिका

'जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस।
खाये टूक सबके विदित बात दुनी सो।' ——— कवितावली

'बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।' ——— कवितावली

२.२.७ तुलसीदास के गुरु :

अत:साक्ष्य और जनश्रुति के आधार पर प्रसिद्ध रहा है कि तुलसीदास के गुरु का नाम नरहरि या नरहरिदास था। पाँच वर्ष के माता-पिता विहिन अनाथ बालक को बाबा नरहिरिदास ने अपने पास रख लिया और कुछ शिक्षा-दीक्षा दी थी। इन्हीं गुरु से बालकाल में तुलसीदास ने सुकर खेत में सर्वप्रथम रामकथा सुनी थी। इसका उल्लेख करते हुए तुलसीदास स्वयं लिखते हैं-

'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सुकर खेत।
समुझि नहिं तसि बालपनु, तब अति रेहे हूँ अचेत।।'

गुरु महिमा का वर्णन करते समय गोस्वामी तुलसीदास ने इन्हीं नरहरिदास को स्मरण करते हुए लिखा है -

'वन्दौं गुरुपद कंज, कृपा सिंध नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर।।'

इसी गुरु के साथ तुलसी काशी में आकर पंचगंगा घाट पर स्वामी रामानन्दजी के स्थान पर रहने लगे। वहाँ पर एक परम विद्वान महात्मा शेष सनातन रहते थे, जिन्होंने तुलसीदासजी को वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि में प्रवीण कर दिया।

munotes.in

२.२.८ तुलसीदास का विवाह :

अन्तःसाक्ष्य और बाह्यःसाक्ष्य के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास का विवाह भारद्वाज गोश्री ब्राह्मण पं. दीनबंधू पाठक की पुत्री रत्नावली के साथ हुआ था, जो परम सुन्दर थी। ग्यारह वर्ष तक तुलसीदास शांति और सुख से पत्नी के साथ सुखोपभोग करते रहे -

'बैस बारही कर गह्यौ, सोरहि गवन कराई।
सत्ताइस लागत करी, नाथ रतन असहाई।।'

गृहस्थ जीवन और यौवन के सुख को तो वे भागते रहे, लेकिन बाद में उन्हें पश्चताप हुआ -

'लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय।
जोबन-जुर जुबती कृपथ्य करि भयों त्रिदोष भरे मदन बाय।।'

तुलसीदास अपनी पत्नी से बहुत प्यार करते थे। एक बार जब रत्नावली अपने मायके चली गई, तो उसका वियोग वह सह न सके। वे भी पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचे। बरसात की रात थी। उन्होंने मुर्दे पर बैठकर गंगा पार की। साँप को रसी समझकर उसके सहारे छत पर चढ़ गये। रत्नावली शर्म से गड़ गई। उन्होंने पति को फटकारते हुए कहा -

'लाज न आवत आपको, दौरें आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ।।
अस्थि चर्म मम देह मम तामे जैसी प्रीति।
तैसो ज़ो श्रीराम महँ होति न तो भवभीति।।'

तुलसीदास के संवेदनशील मन ने रत्नावली के शब्दों के मर्म को समझ लिया। गुरु नरहरिदास ने राम-भक्ति का जो बीज उनके ह्रदय में बोया था वह पत्नी के शब्दों से उर्जावान आलोक पाकर लहलहा उठा। सार्थक जीवन के लिए राम-भक्ति के महत्त्व को अनुभव किया और उसी रात गृह त्याग कर तुलसी विरक्त हो गये। तुलसी की लौकिक प्रीति (रत्नावली से प्रेम) पारलौकिक प्रेम (भगवान की भक्ति की ओर मुड़ गयी। ३२ वर्ष की अवस्था में तुलसीदास संवत् १६०४ में घर-द्वार त्याग कर ईश्वर की आराधना के लिए चल दिये।

तुलसी घर छोड़कर कुछ दिन काशी में रहे तपश्चात वे अयोध्या में भी कुछ समय तक रहे। बाद में तीर्थयात्रा के लिए निकले और जगन्नाथुरी, रामेश्वर, द्वाराका होते हुए बदरिकाश्रम गये। वहाँ से कैलास और मानसरोवर की यात्रा करने के बाद अंत में चित्रकूट आकर बस गये। कहते हैं, यहीं पर हनुमानजी की कृपा से तुलसीदास को प्रत्यक्ष राम के दर्शन हुए थे। प्रसिद्ध है-

'चित्रकूट के घाटि पर, लगि सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन पिसै, तिलक देत रघुवीर।।'

चित्रकूट में ही गोस्वामीजी ने अपने विश्वविख्यात महाकाव्य 'रामचरितमानस' का आरम्भ किया और उसे २ वर्ष ९ महिने में पूरा किया।

'मूल गोसाई चरित' और 'घट रामायण' कि अनुसार गोस्वामीजी ने सं. १६३१ में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरितमानस' की रचना अयोध्या में आरम्भ की थी। स्वयं गोस्वामीजी ने ही निर्दिष्ट कर दिया है -

'संवत् सोलह सो इकतीसा। करौ कथा हरिपद धरि सीसा।।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।'

२.२.९ तुलसीदास का अवसान :

गोस्वामी तुलसीदास की युवावस्था, बाल्यावस्था के समान कष्टकर नहीं थी, परंतु वृद्धावस्था में उन्हें भयंकर बाहु पीड़ा का सामना करना पड़ा था जिसका उल्लेख 'कवितावली' और 'हनुमानबाहुक' में हुआ है। पीड़ा के निवारण के लिए इन्होंने शंकर, राम, हनुमान आदि की प्रार्थना की थी, परंतु 'हनुमान बाहुक' के ४४ छन्द तो पीड़ा निवारणार्थ ही लिखे गये थे। यह पीड़ा इनकी बाहु तक ही सीमित न थी, वरन् शरीर में व्याप्त हो गई थी।

'पाँव पीर, पेट पीर, बाहु पीर मुँह पीर।
जर जर सकल सरीर, पीर भई है।'

परंतु इस भयंकर पीड़ा के समय भी उनकी राम के प्रति अन्यन्य भक्ति में लेश मात्र भी अन्तर न हुआ था। कहा जाता है कि संवत १६८० में काशी में उन्होंने अपनी जीवनलीला समाप्त की। उनकी मृत्यु का संकेत करनेवाला एक प्रसिद्ध दोहा है -

'संवत सोहल सौ असी असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर।।'

२.३ गोस्वामी तुलसीदास का कृतित्व

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त की भाँति उनका कृतित्व भी विद्वानों में मत-वैभिन्य का विषय रहा है। शिवसिंह सेंगर ने इनकी रचनाओं की संख्या १८ मानी है, तो मिश्र बन्धुओं ने उनकी रचनाओं की संख्या २५ स्वीकार की है। बंगवासी 'तुलसी ग्रंथावली' में इनकी कृतियों की संख्या ६० निर्दिष्ट की गई है, जबकि जार्ज ग्रियर्सन और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने तुलसी की निम्नांकित बारह (१२) रचनाओं को ही प्रामाणिक कृतियाँ स्वीकार किया है -

१) वैराग्य संदीपनी - सं. १९२६ - २७ वि.
२) रामाज्ञा प्रश्न - सं. १९२१ तथा सं. १९२७ - २८ वि.
३) रामलला नहछू - सं. १६२८ - २९ वि.
४) जानकी मंगल - सं. १६२९ - ३० वि.
५) रामचरितमानस - सं. १६३१ वि.
६) पार्वत-मंगल - सं. १६४३ वि.
७) कृष्ण - गीतावली - सं. १६४३ - ६० वि.

८) गीतावली - सं. १६३१ - ८० वि.
९) विनय - पत्रिका - सं. १६३१ - ७९ वि.
१०) दोहावली - सं. १६२८ - ८० वि.
११) बरवै रामायण - वि. १६३० - ८० वि.
१२) कवितावली - वि. १६३१ - ८० वि.

पंडित रामगुलाम द्विवेदी ने अपने एक छन्द में इन्हीं रचनाओं का उल्लेख किया है -

"रामलला नहछू सों विराग संदीपिनी हूँ,
बरवै बनाइ विरमाई मति साँई की।
पारवती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाँई की।।
दोहा और कवित्त गीतबन्ध कृष्ण, राम कथा,
रामायण बिनै माँहि बात सब ढाँई की।
जग में सोहानी जगदीस हूँ के मनमानी,
संत सुखदानी बानी तुलसी गुसांई की।।"

काव्य-शैली की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास के इन १२ ग्रन्थों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है -

अ) महाकाव्य - रामचरितमानस।
ब) खण्डकाव्य - रामलला नहछू, जान की मंगल और पार्वती मंगल।
क) मुक्तक काव्य - वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्नावली, बरवै रामायण, विनयपत्रिका, गीतावली, कृष्ण-गीतावली, दोहावली और कवितावली।

भाषा की दृष्टि से गोस्वामीजी की इन बारह रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है -

त) अवधी - रामचरितमानस, दोहावली, वैराग्य संदीपनी, रामलला नहछू, बरवै - रामायण, पार्वती मंगल, जानकी - मंगल और रामाज्ञा प्रश्न।
थ) ब्रज - विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली और कृष्ण - गीतावली।

गोस्वामी तुलसीदास की प्रामाणिक मानी जानेवाली इन बारह कृतियों की वर्णवस्तु पर संक्षेप में प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

१) वैराग्य संदीपनी - अधिकांश विद्वान वैराग्य संदीपनी को तुलसी की प्रथम रचना मानते हुए इसका रचनाकाल सं. १६२६-२७ वि. स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यता है कि तुलसी ने इस कृति की रचना उनके वैराग्य ग्रहण करने के बाद दो-एक वर्षो के अन्तराल में की है। प्रस्तुत कृति में कुल ६२ छन्द है, जिनमें राम, लक्ष्मण और सीता की स्तुति के साथ-साथ भक्ति और निर्गुण ब्रह्म का भी सुन्दर निरुपण किया गया है। कवि ने इस रचना का मूल प्रतिपाद्य स्पष्ट करते हुए स्वयं लिखा है -

"तुलसी वेद पुरान मत, पूजन शास्त्र विचार।
यह विराग संदीपिनी, अखिल ज्ञान को सार।।"

इस कृति में ६४ दोहे, २ सोरठे और १४ चौपाइयाँ हैं। इनमें तीन छन्द प्रयुक्त हुए हैं - दोहा, सौरण और चौपाई। इस ग्रन्थ में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और शांति का विस्तृत विवेचन किया गया है। ग्रन्थ का प्रधान रस शान्त है। इस कृति में अवधी और ब्रजभाषा का मिश्रित रूप मिलता है।

२) **रामाज्ञा प्रश्न** - कतिपय विद्वान 'रामाज्ञा प्रश्न' को गोस्वामी जी की प्रथम कृति मानते हैं और वे इस सम्बन्ध में प्रस्तुत कृति के रचना-काल के सूचक निम्नलिखित दोहे का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं -

"सगुन सत्य ससि नयन गुण, अवधि अधिक नय बान।
होई सकल सुभ जासु, जस प्रीति प्रतीति प्रमान।।"

इस सांकेतिक शब्दावली के आधार पर इस कृति का रचना काल संवत् १६२१ वि. ठहरता है। यह कृति सात सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में सात दोहे हैं। इसप्रकार ग्रन्थ की कुल छन्द-संख्या ३४३ हैं। इस कृति में राम-कथा का वर्णन है। दोहों में यह वर्णन इस प्रकार है कि प्रत्येक दोहे से शुभ या अशुभ संकेत निकलता है, जिससे प्रश्नकर्ता अपने प्रश्न का उत्तर पा लेता है। इस ग्रन्थ का अन्य नाम 'दोहावली रामायण', या 'रामशलाका' भी है। ग्रन्थ के प्रथम तीन सर्गो में रामजन्म से लेकर सम्पाती से वानर यूथ की भेंट तक की कथा वर्णित है। चौथे सर्ग में पुनः रामजन्म से कथा प्रारम्भ होती हैं। पाँचवे तथा छठे सर्ग में सीता के धरती प्रवेश तक की कथा कही गई है। साथ में कई कथाएँ शामिल है। सातवें सर्ग में रामकथा के स्फुट-प्रसंगों को लेकर प्रश्न विचार किया गया है। इस रचना पर सम्पूर्ण रूप से वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है। इसकी भाषा अरबी-ब्रजभाषा मिश्रित अवधी है।

३) **रामलला नहछू** - गोस्वामीजी की आरम्भिक कृतियों में इसकी परिगणना की जाती है। इसमें मात्र २० सोहर छन्द हैं। सोहर २२ मात्राओं का लोक - गीतों से सादृश्य रखनेवाला छन्द है। 'नरछू' शब्द 'नह-खुर' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है, जो उस संस्कार का संकेत करता है जिसे यज्ञोपवीत और विवाह संस्कारों के अवसर पर सम्पन्न किया जाता है और नाई अथवा नाइन द्वारा नाखून काटे जाते हैं। प्रस्तुत कृति में तुलसी ने नाइन द्वारा राम के नाखून काटे जाने का वर्णन करते हुए दिखाया गया है कि कौशल्याजी दूल्हा बने राम को अपनी गोद में लिए बैठी है और उनके शीश पर अपने अंचल की छाया कर रही है -

"गोद लिए कौसल्या बैठी रामहि वर हो,
सोभित दुलह राम सीस पर अंचर हो।।"

इस संस्कार के अवसर पर निम्नवर्ग की नारियाँ कौशल्या आदि रानियों के साथ परिहास करते चित्रित की गई है। इस काव्य में गोस्वामी जी की प्रबंध पटुता, लोकाचार की सूक्ष्म जानकारी, भाषा प्रयोग की विलक्षण क्षमता और राम में अन्यन्य भक्ति का पुष्ट प्रमाण मिलता है। वेणीमाधवदास ने इस कृति हा रचना समय सं. १६३९ के आस-पास माना है, तो डॉ.

माताप्रसाद गुप्त इसका रचनाकाल सं. १६११ के आस-पास मानते है। रामलला नहछू की भाषा अवधी है।

४) जानकी मंगल - वेणीमाधव ने इस कृति का रचना समय सं. १६४३ माना है जबकि डॉ. माताप्रसाद गुप्त इसका रचना काल सं. १६२७ मानते है। इस कृति में सोहर छन्दों में राम - सीता का विवाह वर्णित है। रचना के प्रकाशित पाठ में १९२ अरुण (द्विपदियाँ) और २४ हरिगीतिकाएँ हैं, इस तरह ग्रन्थ का विस्तार २१६ छन्दों में हुआ है। ८ अरुण के पीछे एक हरिगीतिका छन्द है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ नियमित रूप से मंगलाचरण में होता है और अंत मंगल कामना में।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से प्रस्तुत कृति 'रामलला नहछू' की अगली कड़ी कही जा सकती है। क्योंकि 'रामलला नहछू' में राम के वर-रूप का चित्रण किया गया है, जबकि 'जानकी मंगल' में कवि ने राम और सीता के विवाह का वर्णन किया है। इस कृति का श्रीगणेश सीता के जन्म की घटना से किया गया है। तदनन्तर सीता के विवाह-योग्य हो जाने पर, उनके विवाह हेतु 'सीता-स्वयंवर' का आयोजन किये जाने, उस स्वयंवर में विभिन्न नरेशों के शामिल होने, राम द्वारा धनुष्य को भंग करने तथा सीता और उनकी तीन बहनों - श्रुतकीर्ति, माण्डवी और उर्मिला का क्रमशः राम, शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण के साथ विवाह किए जाने का वर्णन किया गया है। विवाह के पश्चात बरात के अयोध्या लौट जाने के साथ कृति का समापन हुआ है। प्रस्तुत कृति और 'रामचरितमानस' की कथा में कुछ अन्तर है। 'रामचरितमानस' में परशुराम धनुर्भंग के बाद ही आ पहुँचते हैं, किन्तु 'जानकी मंगल' में बारात के वापस होने पर अयोध्या के मार्ग में मिलते है -

"पथ मिले भृगुराज हाथ फरसा लिए।।"

'जानकी मंगल' गोस्वामी जी की अवधी में लिखी गई अत्यन्त सफल प्रबन्ध रचना है।

५) रामचरित मानस - 'रामचरितमानस' तुलसीदास की सर्व प्रमुख कृति है। यह हिन्दी साहित्य की अमर और विशिष्ट रचना ही नहीं अपितु विश्वजनीन वाङ्मय की विशेष कृति है। अपने युग का अमर सृजन है। इसमें राम की संपूर्ण जीवनगाथा छन्दोबद्ध हुई है। इसकी रचना सं. १६३१ में प्रारम्भ हुई थी। रामचरितमानस कुल सात काण्डों में जिन्हें सोपान कहा गया है, विभक्त है। इनमें चौपाइयों तथा दोहों का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है, तथापि सोरठा, कवित्त, छप्पय आदि कुछ अन्य छन्द भी बीच बीच में आते रहे हैं। प्रायः आठ या अधिक अर्धलियों के अनंतर एक दोहा आता है, और ऐसे दोहों की संख्या 'मानस' में १०७४ है। 'मानस' में प्रयुक्त चौपाइयों की संख्या ५१०० है और छन्द सोरठा, और दोहा सब मिलाकर दस कम दस हजार अर्थात ९९०० है। 'मानस मयंक' में इसी को पुष्ट करती व्याख्या इस प्रकार दी हुई है -

"एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारू।
छन्द सोरठा, दोहरा, दस रित दस हज्जारू।।"

सात काण्डों में विभक्त अवधी भाषा में निबद्ध पर श्रेष्ठ महाकाव्य केवल राम की गाथा ही नहीं गाता रहा है, अपितु अपने युगीन वातावरण, परिस्थितियों, प्रश्नों एवं विषमताओं के सन्दर्भ में दिशाएँ देने में सक्षम सिद्ध हुआ है। भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू-दर्शक की दृष्टि से

रामचरितमानस विश्वकोश माना जा सकता है। तुलसी की रामकथा का स्त्रोत कोई एक ग्रन्थ नहीं है। यह 'नानापुराण निगमागम सम्मत' रामकथा है। इस राम कथा पर वाल्मीकि रामायण, आद्यात्म रामायण, श्रीमद् भागवत, प्रसन्न राघव नाटक, हनुमन्नाटक और भगवतगीता का प्रभाव स्पष्टता लक्षित होता है। विभिन्न स्त्रोतों से युगसापेक्ष मूल्यवान सन्दर्भों और मौलिक उद्भावनाओं के समन्वित रूप से मानस की रामकथा का तानाबाना तैयार किया गया है। घटनाओं का नियोजन, चरित्रों का विकास, व्यापक जीवनानुभूति, मानकीय संसक्ति, और प्रभावी अभिव्यक्ति कौशल्य के कारण 'रामचरितमानस' भारतीय साहित्य का गौरव बन गया है।

६) **पार्वती मंगल** - इस ग्रन्थ की रचना सं. १६४३, फाल्गुन शुक्ला पंचमी गुरुवार को हुई है। इसका संकेत स्वयं गोस्वामीजी ने दिया है -

"जय संवत, फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि विरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु।।"

इस ग्रन्थ का मुख्य विषय शिव-पार्वती वर्णन है। इसमें ठेठ अवधी में लिखे ७४ मंगल सोहर और १६ हरिगीतिका छन्दों का समावेश है, इस तरह यह ९० छन्दों का लघु खण्डकाव्य है। 'मानस' में वर्णित शिव-पार्वती विवाह कथा से पार्वती मंगल की कथा भिन्न है। 'मानस' में वर्णित पार्वती के दृढ़ व्रत की परीक्षा सप्तर्षियों द्वारा ली गई है, किंतु 'पार्वती मंगल' में पार्वती की परीक्षा वटु वेश में स्वयं शिव लेते हैं। 'मानस' में पार्वती ने स्वयं-ऋषियों के साथ वाद-विवाद में भाग लिया है, 'पार्वती मंगल' में पार्वती अपनी सहचरी के द्वारा शिव को उत्तर देती है। 'मानस' में 'जस दूलह तस बनी बराता' का रूप है और शिव-विवाह में भी सर्प लपेटे रहते हैं, 'पार्वती मंगल' में शिव से अशिव वेश में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रसंग पर कालिदास से 'कुमार सम्भव' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अपनी मार्मिकता, प्रबन्ध पटुता, सरसता और प्रभावात्मकता के कारण 'पार्वती मंगल' अनुठा बन पड़ा है।

७) **कृष्ण गीतावली** - अन्तःसाक्ष्य के अभाव में अधिकांश विद्वान इसका रचना काल सं. १६५८ के आस-पास मानते हैं। 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। यह स्फुट पदों का संग्रह है। इस ग्रन्थ के पदों की संख्या ६१ हैं। यह रचना ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत नहीं की गई है, क्योंकि न तो इसके आदि में मंगला चरण है और न अन्त में कोई मंगल कामना ही। इसमें कोई काण्ड या स्कन्ध नहीं है। यह रचना संगीत की विभिन्न राग - रागनियों के आधार पर लिखा गया मुक्तक गीतों का संग्रह है। इसका प्रतिपाद्य कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन और सगुणोंपासना की स्थापना है। यह 'गीतावली' छोटी होते हुए भी ललित है और शुद्ध ब्रजभाषा में प्रस्तुत है। यह रचना कवि की प्रतिभा की पूर्ण परिचायिका है। यह जितनी सरल है उतनी ही मनोवैज्ञानिक भी।

८) **गीतावली** - विद्वानों ने इसका रचनाकाल सं. १६३० से लेकर १६७० वि. तक अर्थात लगभग चालीस वर्ष स्वीकार किया है। अभिप्राय यह है कि इसके अंतर्गत गोस्वामीजी द्वारा समय समय पर रचे गये पद संकलित कर दिये गये हैं। प्रस्तुत कृति में ३२८ छन्द है, जिसमें राम की कथा का वर्णन विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित किया गया है। यह गीत रचना है, इसमें कोमल भावनाओं का अंकन हुआ है। 'गीतावली' में कवि ने 'रामचरितमानस' की भाँति पदों में

राम कथा का वर्णन किया है और इन पदों को 'मानस' की भाँति ही सात काण्डों में विभक्त किया है। कवि ने घटना-योजना की अपेक्षा भाव-संयोजना पर अधिक बल दिया है, जिसमें इस कृति विभिन्न काण्डों में रचित पदों की संख्या में बहुत अधिक अन्तर विद्यमान है। उदाहरणार्थ इसका सबसे बड़ा काण्ड 'बालकाण्ड' है, जिसमें १०८ पद है, जबकि 'किष्ठिंधाकाण्ड' सबसे छोटा काण्ड है जिसमें मात्र दो पद हैं। अन्य काण्डों में से अयोध्याकाण्ड में ८९, अरण्यकाण्ड में १७, सुन्दर काण्ड में ५१, लंकाकाण्ड में २३ तथा उत्तरकाण्ड में ३८ पद हैं। मुख्य घटनाओं की ओर कवि ने केवल संकेत भर कर दिया है। कैकयी - दशरथ संवाद, लंका-दहन तथा रावण युद्ध जैसी घटनाओं की ओर कवि की दृष्टि नहीं गई है। भरत का चित्रण इसमें अधूरा है। 'गीतावली' पर सूरदास के 'सूरसागर' की स्पष्ट छाप है। 'गीतावली' में श्रृंगार रस प्रधान है। राम का सौन्दर्य और ऐश्वर्य ही 'गीतावली' की आत्मा है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है।

९) **विनयपत्रिका** - वेणी माधवदास ने 'विनयपत्रिका' का रचनाकाल सं. १६३९ के आस-पास माना है, जब तुलसीदासजी मिथिला यात्रा के लिए प्रस्थान करने वाले थे। उनका मानना है कि कलियुग से सताये जाने पर तुलसी ने अपने कष्ट के निवारणार्थ इस ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ से यह तो अवश्य ज्ञात होता है कि तुलसी ने अपनी दारुण व्यथा प्रकट करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की थी। विनयपत्रिका में कुल पदों की संख्या १७६ हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में गणेश, सूर्य, शिव, पार्वती, दुर्गा, हनुमान आदि देवताओं की स्तुति की गई है। इसके पश्चात् आनन्दवन और चित्रवन के महात्म्य का वर्णन किया गया है। तद्नन्तर राम के समीप सदैव रहनेवाले लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न को प्रसन्न करने का चित्रण है और अन्त में जगत् - जननी सर्व श्रेयस्करी सीता को प्रयत्न करने का उपक्रम किया गया है। विष्णु रूप राम की स्तुति तो ग्रन्थ भर में है। विनयपत्रिका में कोई कथा नहीं है। एक भक्त की प्रार्थना है, जो उसने अपने आराध्य से अपने उद्धार के लिए की है। रामभक्ति की इस ग्रन्थ का आदर्श है। ब्रजभाषा में विरचित इस ग्रन्थ में केवल एक ही रस है और वह है शांत रस। रचना और विचारों की प्रौढ़ता की दृष्टि से यह 'रामचरितमानस' के समकक्ष है।

१०) **दोहावली** - वेणी माधवसास ने दोहावली का रचना काल सं. १६४० माना है, किंतु यह तिथि ठीक नहीं मानी जा सकती, क्योंकि दोहावली में सं. १६६५ से १६८० तक की घटनाओं का वर्णन मिलता है। 'दोहावली' में दोहों की संख्या ५७३ है। इनमें मानस के ८५, रामाज्ञा के ३५, सतसई के १३१ और वैराग्य संदीपिनी के २ दोहे संम्मिलित है। शेष दोहे नवीन है। इसमें २२ सोरठे भी हैं। 'दोहावली' में कोई विशेष कथानक नहीं हैं। नीति, भक्ति, राम-महिमा, नाम-महात्म्य, राम-महिमा, तत्कालीन परिस्थितियाँ, राम के प्रति चातक के आदर्श का प्रेम तथा आरभ-विषयक उक्तियाँ ही मिलती हैं। यह ग्रन्थ ब्रजभाषा में लिखा गया है।

११) **बरवै रामायण** - वेणी माधवदास ने इस ग्रन्थ का रचनाकाल सं. १६६९ माना है। इसमें ६९ बरवै छन्द में राम-कथा कही गई है, पर यह कथा संकेत रूप में ही है। इसमें रामचरितमानस की भाँति काण्डों का विभाजन किया गया है। बालकाण्ड में १३, अयोध्याकाण्ड में ८, अरण्यकाण्ड में ६, किष्किन्धा काण्ड में २, सुन्दर काण्ड में ६, लंकाकाण्ड में मात्र १ और उत्तराकाण्ड में २७ छन्द हैं। बालकाण्ड में राम जन्मादि कुछ नहीं है। सीता-राम का सौन्दर्य-वर्णन और जनकपुर में स्वयंवर का संकेत मात्र है। इसीप्रकार अन्य काण्डों की कथा भी अत्यन्त संक्षेप में है। उत्तर काण्ड में कोई कथा ही नहीं है, ज्ञान और भक्ति का वर्णन मात्र है। समूचे ग्रन्थ में भरत का नाम एक बार भी नहीं आया है। इस ग्रन्थ की भाषा अवधी है।

१२) कवितावली - गोस्वामीजी की जिन बारह कृतियों को उनकी प्रामाणिक कृतियाँ स्वीकार किया जाता है, उनमें 'कवितावली' अंतिम रचना है। इसकी वर्ण्य-वस्तु भी 'मानस' की तरह राम-कथा है और कथा का विभाजन भी सात काण्डों में किया गया है। विभिन्न काण्ड और उनमें संकलित कवितों की संख्या इस प्रकार हैं - बालकाण्ड = २२ छन्द, अयोध्याकाण्ड = २८ छन्द, अरण्यकाण्ड = १ छन्द, किष्किंधाकाण्ड = १ छन्द, सुन्दरकाण्ड = ३२ छन्द, लंकाकाण्ड = ५८ छन्द और उत्तरकाण्ड = १८३ छन्द। इस तरह 'कवितावली' में कुल ३२५ छन्द है। कवितावली में राम के ऐश्वर्य के साथ उनका वीरत्व और शौर्य है। उत्तरकाण्ड कवितावली का सबसे बड़ा भाग है। इसमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की महिमा ही अधिक है। इसमें कवि के जीवन की घटनाओं का यथेष्ट परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ की भाषा ब्रज है।

२.४ सारांश

गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन की रूपरेखा निश्चित करने के लिए यद्यपि आधारभूत सामग्री की कमी नहीं है, परन्तु फिर भी एक सुनिश्चित जीवन-वृत्त देना सम्भव नहीं हो पाया है, क्योंकि राजापुर और सोरों के आग्रह से अनुप्रेरित ऐसी सामग्री प्रस्तुत की गई है कि जिनके द्वारा मतैक्य पाना कठीण है। भारतीय आलोचकों में सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' में सं. १९३४ में वेणीमाधव के 'गुसाई चरित्र' के आधार पर तुलसीदास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश ड़ाला। इसके उपरांत इस विषय पर आधारित समीक्षायें पत्र-पत्रिकाओं में भी निकली और पुस्तकाकार रूप में भी। इन सभी का आधार लेकर गोस्वामी जी की एक स्पष्ट जीवन-रेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन वृत्त की भाँति उनकी कृतियाँ भी विद्वानों में मत-वैभिन्य का विषय रही है। शिवसिंह सेंगर ने उनकी रचनाओं की संख्या १८ निर्दिष्ट की है, जबकि बंगवासी 'तुलसी ग्रन्थावली' में उनकी कृतियों की संख्या ६० निर्दिष्ट की गई है। इसी तरह मिश्र बन्धुओं ने उनकी रचनाओं की संख्या २५ स्वीकार की है, तो आ. रामचन्द्र शुक्ल और जार्ज ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने उनकी १२ प्रामाणिक रचनाओं का उल्लेख किया है। तुलसी की कृतियों से ज्ञात होता है कि वे बहुमुखी काव्य-प्रतिभा के कलाकार थे। वे कोरे कवि नहीं, भक्त कवि थे और उनकी रामभक्ति ने उनकी रचनाओं में ऐसे व्यावहारिक आदर्शवाद की सृष्टि की है, जो उल्लेखनीय है।

२.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. गोस्वामी तुलसीदास का जीवन परिचय दीजिए।
२. गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व पर प्रकाश ड़ालिए।
३. गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य का सामान्य परिचय दीजिए।

२.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१. तुलसीदास का जन्म कब हुआ था ?

२. तुलसीदास का जन्म-स्थान कौन-सा माना जाता है ?

३. तुलसीदास के माता का नाम क्या था ?
४. तुलसीदास के पिता का नाम लिखिए ?
५. तुलसीदास के बचपन का नाम क्या था ?
६. तुलसीदास के बचपन के गुरु कौन थे ?
७. तुलसीदास की पत्नी का नाम लिखिए ?
८. रत्नावली के पिता का नाम क्या था ?
९. तुलसीदास ने रामचरितमानस ग्रन्थ का आरम्भ कब किया था ?
१०. तुलसीदास को हनुमान के कारण राम-दर्शन कहाँ पर हुए ?
११. रामचरितमानस का काव्य रूप क्या है ?
१२. मानस में दोहों की संख्या कितनी है ?
१३. 'मानस' में प्रयुक्त चौपाइयों की संख्या कितनी है ?
१४. 'मानस' में कुल छन्दों की संख्या कितनी है ?
१५. तुलसीदास की अंतिम रचना किसे माना जाता है ?
१६. तुलसीदास को 'कलिकाल का वाल्मीकि' किसने कहा है ?
१७. 'बुद्धदेव के बाद भारत के सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास है' यह कथन किसका है ?

२.७ संदर्भ ग्रंथ

१. तुलसी - सं. उदयभानु सिंह
२. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह
३. तुलसीदास - नंदकिशोर नवल
४. तुलसी की साहित्य साधना - डॉ. लल्लन राय
५. विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य - डॉ. रामप्रसाद मिश्र
६. तुलसी जन्मभूमि : शोधपरक समीक्षा - प्रेमनारायण गुप्त
७. तुलसी जन्मभूमि एक मौलिक चिंतन - प्रेमनारायण गुप्त
८. तुलसी जीवनवृत्त : एक सिंहावलोकन - कृष्ण मोहन मिश्र
९. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

❖❖❖❖

munotes.in

३

तुलसीदास की समन्वय भावना

इकाई की रुपरेखा :

३.० इकाई का उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ तुलसीदास की समन्वय साधना

- ३.२.१ शैव और वैष्णव का समन्वय
- ३.२.२ वैष्णव एवं शाक्तों का समन्वय
- ३.२.३ रामावत संप्रदाय एवं पुष्टिमार्ग का समन्वय
- ३.२.४ अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय
- ३.२.५ ज्ञान और भक्ति का समन्वय
- ३.२.६ सगुण और निर्गुण का समन्वय
- ३.२.७ नर और नारायण का समन्वय
- ३.२.८ राजा और प्रजा का समन्वय
- ३.२.९ द्विज और शूद्र का समन्वय
- ३.२.१० पारिवारिक क्षेत्र में समन्वय
- ३.२.११ मानव संस्कृति का समन्वय
- ३.२.१२ साहित्यिक समन्वय

३.३ सारांश

३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.५ लघुत्तरीय प्रश्न

३.६ सन्दर्भ ग्रन्थ

३.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषय वस्तु के अध्ययन से अध्येता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश निहित है -

- तुलसीदास की समन्वय भावना की जानकारी देना।
- तुलसीदास की लोकनायक व्यक्तित्व का परिचय कराना।

munotes.in

३.१ प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास का अविर्भाव जिस युग में हुआ था, उस युग में धर्म, समाज, राजनीति आदि क्षेत्रों में सर्वत्र पारस्परिक वैषम्य एवं विभेद बोलबाला था। धर्म के क्षेत्र में 'एक ओर हिन्दू-मुस्लिम भावनाओं के कारण वैमनस्य जड़ पकड़ रहा था, तो दूसरी ओर शैव, शाक्त एवं वैष्णव मत के अनुयायीं में यह विद्वेष और वैमनस्य इतना बढ़ा था कि शिवकांची एवं विष्णुकांची तक निर्माण हो गया था। उत्तर भारत में भी प्रायः धार्मिक संघर्ष चल रहे थे जो तत्कालीन धार्मिक शांति के सर्वथा प्रतिकूल थे। यही दशा राजनीति एवं साहित्यिक क्षेत्र में भी थी। आपस में ईर्ष्या-द्वेष, विद्वेष एवं वैमनस्य के कारण समूचे भारत में घोर अशांति एवं विषमता का माहौल उत्पन्न हो गया था। तुलसीदास ने इन तत्कालीन परिस्थितियों का गहराई के साथ अध्ययन एवं अनुशीलन करके समाज में व्याप्त विषमता एवं वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया। तुलसीदास ने इस विषमता को दूर करने के लिए समन्वय की प्रवृत्ति को अपनाया और स्वयं धर्म, राजनीति, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में इसे स्थापित करते हुए पारस्परिक विरोध एवं वैमनस्य को दूर किया।

३.२ तुलसीदास की समन्वय साधना

गोस्वामी तुलसीदास का विराट व्यक्तित्व परस्पर विपरित ध्रुवों का समाहार करता है। वह अपनी समन्वयशीलता के लिए ही जाना जाता है। अपने इस समन्वय के लिए उन्होंने आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों को चुना और इन क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करते हुए तत्कालीन जनजीवन में परिव्याप्त घोर अशांति, अनाचार, अधार्मिकता, विषमता आदि को दूर करने की सफल चेष्टा की। अपने इसी समन्वययात्मक दृष्टिकोन के कारण तुलसी लोकनायक भी कहे जाते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार - "लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में परस्पर विरोधी नाना संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार, निष्ठाएँ और विचार - पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।" इसके आगे वे कहते हैं - "उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है, इसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है, गार्हस्थ और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य, का भावावेग और अनासक्त चिन्तन का समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अंत तक दो छोरों पर जानेवाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयत्न है। तुलसी की समन्वय भावना का स्वरूप इस प्रकार है -

३.२.१ शैव और वैष्णव का समन्वय :

भारतीय धर्म साधना में त्रिदेव की कल्पना का स्थान महत्वपूर्ण है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव - तीन प्रमुख देव माने गये हैं, जिनमें ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता अर्थात् उत्पादक हैं, विष्णु सृष्टि के पालक हैं और शिव सृष्टि के संहारक हैं। विष्णु के उपासक 'वैष्णव' तथा शिव के उपासक 'शैव' कहलाया है। कालान्तर में विष्णु और शिव के उपासकों ने अपने अपने आराध्यको ही सृष्टि के उत्पादक, पालक और संहारक तथा सर्व-शक्तिमान मान लिया और परस्पर एक दूसरे को नीचा दिखाने में उलझ गये। शिव के अनुयायी विष्णु के तुच्छ मानने लगे तथा विष्णु के उपासक शिव को उपेक्षा को दृष्टि से देखने लगे तुलसी ने अपने युग के इस समाज विरोधी विद्वेष को देखा, समझा और लोगों के भ्रम का निवारण करने के लिए

'रामचरितमानस' के कथा-प्रवाह में ऐसे प्रसंगों तथा कथनों को नियोजित किया, जिससे सहज स्वाभाविक रूप में ही शैष और वैष्णवों में सौहार्द्र स्थापित हो गया। धार्मिक-द्वेष और भेदभाव की इस इकाई को पाटने के लिए उन्होंने राम के मुँह से शिव की प्रशंसा करवाई है -

"शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहि कलप भरि, धोर नरक महँ बास।।"

"करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरे ह्रदय परम कल्पना।"

इतना ही नहीं, तुलसी ने रहस्य की एक बात और भी कही है -

"औरउ एक गुपुत मत सबहिं, कहहुँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि।।"

आज जो विश्व मंदिरों में मानस पाठ हो रहे हैं और राम के मन्दिरों में शिवाभिषेक हो रहे हैं ये समस्त समन्वय तुलसी के मानस की ही देन हैं। तुलसी ने मानस में शिव के मुख से समुचित प्रसंग पर राम के बारे में कहलवाया है -

"सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।।"

३.२.२ वैष्णव एवं शाक्तों का समन्वय :

तुलसीदास के समय में शिव और विष्णु के भक्तों में जिस तरह पारस्परिक वैमनस्य एवं द्वेष उत्तर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हुआ था, उसी तरह वैष्णवों और शाक्तों में भी घोर संघर्ष चल रहा था। तुलसी ने अपने समन्वयवादी दृष्टि को अपनाकर शैव और वैष्णवों की भाँति शाक्तों और वैष्णवों के वैमनस्य एवं संघर्ष को दूर करने के लिए 'शक्ति' की उपासना की। तुलसी ने रामचरितमानस में सीता को ब्रह्म राम की शक्ति बताया साथ ही उसे उद्भवस्थिति संहारकारिणी, कलेश हारिणी, सर्वश्रेयस्करी आदि कहकर उसकी वंदना की है। इतना ही नहीं सीता के द्वारा शक्तिरूपा पार्वती की स्तुति भी करायी है -

"नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।।
भव भव विभव पराभव कारिनि। बिस्व ब्रिमोहिनी स्वबस बिहारिनि।।"

३.२.३ रामावत संप्रदाय एवं पुष्टिमार्ग का समन्वय :

रामावत सम्प्रदाय में राम को ही परब्रह्म माना है तथा उसके परे, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार नामक पाँच रूप माने गये हैं। इन्हीं रूपों में इनकी आराधना एवं अर्चना होती है। तुलसी ने इन पाँचों रूपों के अनुकूल हीं रामचरितमानस में भगवान श्रीराम का चित्रण किया है। इसके साथ ही पुष्टि मार्ग के अनुसार ब्रह्म की अनुकृपा अथवा अनुग्रह को भी सर्वोपरि बताया है। यह करते हुए तुलसी ने सिद्ध किया है कि कितनी ही पूजा, अर्चना एवं उपासना की जाए किन्तु भगवान की कृपा के बिना कभी कुछ नही होता। साथ ही बिना भगवान की कृपा के राम की भक्ति भी प्राप्त नहीं होती। इसप्रकार राम की भक्ति में भी राम की कृपा की महत्ता प्रदर्शित करते हुए 'रामचरितमानस', 'गीतावली' और 'कवितावली' आदि में भगवा राम की

भक्ति का निरूपण करते हुए तुलसी रामावत सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्गीय मत में भी सुन्दर समन्वय स्थापित किया है।

३.२.४ अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय :

गोस्वामी तुलसी ने केवल धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में ही समन्वय का मार्ग ग्रहण नहीं किया है वरन दर्शन के क्षेत्र में भी समन्वय की नीति अपनाई है। इस काल में ब्रह्म को लेकर द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि विभिन्न मत प्रकाश में आए। रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करते हुए विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की तथा निम्बर्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद का प्रचार किया। तुलसी रामानुजाचार्य की परम्परा होने के कारण विशिष्टाद्वैतवाद थे, किन्तु तुलसी का किसी भी विशिष्ट दार्शनिक मत के प्रति कट्टर आग्रह नहीं था, वरन् उन्होंने विभिन्न मतों के मध्य समन्वय करने का स्तुत्य कार्य किया। विशिष्टाद्वैतवादी होने के कारण उन्होंने जीव को ब्रह्म का अंश बतलाया है -

"ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो माया बस भरउ गोसाई। बंध्यौ कीट कर्मट की नाई।।"

ब्रह्म को उन्होंने निर्गुण, अरूप, अलख, अज, सर्वव्यापक, अमल अविनाशी आदि कहकर उनकी विशिष्टताओं का उल्लेख किया है। कुछ स्थलों पर तुलसी ने शंकराचार्य के मत का अनुकरण करते हुए ब्रह्म को अज, सर्वज्ञ, स्वतंत्र तथा सत्य कहा है। वास्तव में उन्होंने माया तथा जगत् का विवेचन भी शंकराचार्य के अनुसार ही किया है। इस रूप में उन्होंने अद्वैतवाद तथा विशिष्ट द्वैतवाद के सिद्धान्तों को मिलाकर चलने का प्रयत्न किया है।

३.२.५ ज्ञान और भक्ति का समन्वय :

तुलसीदास के समय में सन्त मत का व्यापक प्रचार प्रसार हो गया था। कबीर के ज्ञान मार्ग के अनुयायी भक्तों को तुच्छ समझते थे तथा भक्तजन ज्ञानियों को निरस, शुष्क, दुर्लभ और कठोर बताते थे। तुलसी ने मानस में ज्ञान और भक्ति दोनों को महत्त्व दिया। उन्होंने -

"कहहि संत सुनि वेद पुराना।
नहिं कछु दुलर्भ ज्ञान समाना।।"

कहकर ज्ञान की श्रेष्ठता को भी स्वीकार किया है तथा 'ज्ञान अगम प्रत्युह अनेका' अथवा 'ज्ञान के पंथ कृपान की धारा' आदि कहकर ज्ञान मार्ग की कठिनाई को भी प्रकट किया है। तुलसी ने भक्ति की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए 'भक्ति संतंत्र सकल सुखानी' कहा है। तुलसी ने तो ज्ञान और भक्ति में समन्वय स्थापित करने की पूरी चेष्ठा की है -

"भगतहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।"

३.२.६ सगुण और निर्गुण का समन्वय :

तुलसी के समय में दो प्रकार की भक्ति प्रचलित थी - निर्गुण और सगुण। एक और सूफीमत के अनुयायी निर्गुण भक्ति को ही निर्वाण का मार्ग बताते थे, तो दूसरी ओर सगुण भक्ति

के अनुयायों के अनुसार बिना सगुण दर्शक के मन की चंचलता पर काबू नहीं पाया जा सकता है। महाकवि सूरदास ने अपने 'भ्रमरगीत' में ब्रह्म के निर्गुण रूप का खण्डन करके सगुण की महत्ता का प्रतिपादन किया था। तुलसी ने इन दोनों मार्गों की अतिशयकता को दूर कर मध्यम मार्ग का चयन किया। उन्होंने अपने आराध्य राम के स्वरूप का वर्णन करते हुए राम को बार-बार निर्गुण -सगुण स्वरूप से युक्त कहा -

"अगुन सगुन दुह ब्रह्म स्वरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।"

वस्तुतः राम एक ही हैं। वे ही निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, व्यक्त और अव्यक्त, अन्तर्यामी और बहिर्यामी है। तुलसी का कहना है कि निर्गुण राम ही भक्तों के प्रेमवश सगुण रूप में प्रकट होते हैं -

"अगम अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"

३.२.७ नर और नारायण का समन्वय :

तुलसी ने अपने आराध्य राम को नर और नारायण अर्थात् मानव और ब्रह्म दोनों रूपों में चित्रित किया है। तुलसी से पूर्व राम का महत्त्व दशरथ के पुत्र के रूप में ही था, उन्हें कोई भी परात्पर, ब्रह्म, अज एवं अविनाशी नहीं मानता था। इसीलिए कबीर ने 'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना राम नाम का मरम है आना' कहकर राम के दशरार्थ पुत्र रूप को ब्रह्म से पृथक कहा था। वेदों में राम का वर्णन नहीं है। वहाँ केवल राम, सीता, दशरथ आदि के नामों का प्रयोग पारिभाषिक स्वरूपों का वर्णन करने के लिए मिलता है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में वैदिक राम और दशरार्थ राम में एकत्व स्थापित किया है। उन्होंने राम को आदर्श राजा और मर्यादा पुरषोत्तम के रूप में चित्रित किया है, वहाँ राम आदर्श व्यक्ति और मर्यादा पुरषोत्तम है। तुलसी के राम की यह विशेषता है कि इसमें वेदों का राम, वाल्मीकि द्वारा निरुपित आदर्श पुरुष राम तथा रामावत सम्प्रदाय का परब्रह्म राम मिलकर एक हो गये हैं। यह तुलसी की समन्वय साधना का परिणाम है। उन्होंने 'भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी' कहकर उन्हीं ब्रह्म को कौशल्या-पुत्र या दशरथ सुत के रूप में अवतरित दिखाकर अपने इष्ट देव को साधारण मानव या नर से ऊपर उठाते हुए नारायण के ब्रह्मपद पर आसीन कर दिया है।

"व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण विगत विनोद।
सो अज प्रेम भक्ति बस कौसल्या के गोद।।"

इसी कारण तुलसी के राम अवतारी पुरुष होकर भी अज, अनवध अरूप एवं अचल हैं, सगुण होकर भी निर्गुण एवं निर्विकार है, अनिकेत होकर भी अवधवासी हैं, शील एवं सौन्दर्ययुक्त होकर भी अखण्ड, अनन्त एवं व्यापक हैं। वास्तव में तुलसी ने राम के रूप में नर और नारायण का तथा मानव और ब्रह्म का सुन्दर समन्वय किया है।

३.२.८ राजा और प्रजा का समन्वय :

तुलसी के युग में भारतीय राजनीतिक जीवन की बड़ी दयनीय दशा थी। राजा और प्रजा में बड़ा भारी अन्तर था। राजा प्रजा से अधिक श्रेष्ठ और महान समझा जाता था। यहाँ तक कि राजा को ईश्वर का रूप समझा जाता था। राजागण अपने भोग विलास और ऐश्वर्य भोग के

सामने प्रजा की चिन्ता नहीं करते थे। ऐसे शासकों की तुलसी ने आलोचना की और बताया कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुख पाती है वह राजा निश्चय ही नरक का भागी बनता है -

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवनि नरक अधिकारी।।"

तुलसीदास ने राजा को मुख के समान तथा प्रजा को हाथ और नेत्रों के समान बताकर स्पष्ट किया कि जिस प्रकार मुख से खाये अन्न से शरीर के सभी अंग पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार शरीर के सभी अवयवों को अपना-अपना काम कर उस ऋण को उतारना चाहिए। भाव यही है कि राजा का अस्तित्व प्रजा के द्वारा है और प्रजा का कल्याण भी राजा के द्वारा ही होता है। इसतरह तुलसी ने राजा और प्रजा के समन्वय पर बल दिया है।

३.२.९ द्विज और शूद्र का समन्वय :

तुलसी के समय में जाति-पाँति एवं छुआछूत का भेद-भाव अपने चरमोत्कर्ष पर था। उच्चवर्ग के लोग निम्नवर्ग के लोगों से घृणा करते थे और उनसे अपना व्यवहार करना भी बुरा मानते थे। तुलसी ने इस भेदभाव को देखा और समझा था। इस सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए उन्होंने रामचरितमानस में ब्राह्मण कुलावंतसगुरु वशिष्ठ को शुद्रकुल में उत्पन्न निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर ब्राह्मणों एवं शुद्रों में समन्वय स्थापित किया तथा उच्च क्षत्रिय कुलोत्पन्न राम को तुच्छ वानर, भालू, विभिषण राक्षस तक का प्रेमांलिंगन करते हुए दिखाकर उच्चवर्ग एवं निम्न वर्ग में समन्वय स्थापित किया है।

३.२.१० पारिवारिक क्षेत्र में समन्वय :

तुलसी ने केवल धर्म, दर्शन एवं समाज के क्षेत्र में ही समन्वय स्थापित किया अपितु पारिवारिक क्षेत्र में उसकी प्रतिष्ठा की है। मानस में कवि ने जो अयोध्या का राज परिवार चित्रित किया है उसमें हमें आदर्श रूप परिपूर्ण समन्वय के दर्शन उपलब्ध होते हैं। पिता-पुत्र, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-भाई, पति-सपत्नी, प्रजा-राजा, गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक के समन्वय की ओर कवि ने विभिन्न प्रसंगों में संकेत किया है। सभी पात्र अपने अपने कर्तव्यों को भली प्रकार जानते हैं। राम का लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन के प्रति प्रेम आदर्श भ्रातृप्रेम का उदाहरण है। राम राज्य त्याग देते हैं, भरत उसे स्वीकार नहीं करते। एक राज्य दे रहा है, दूसरा उसे सादर लौटा रहा है, कितनी भावुकता भरी है इस आदर्श भ्रातृत्व में। वनवास दिये जाने पर भी राम के मन में कैकयी के प्रति किसी भी प्रकार की मलिनता नहीं आती है। कौशल्या भी भरत को राम से अधिक निकट रूप में स्वीकार करती है। सीता एक आदर्श पत्नी के रूप में अपने पत्नी धर्म का सफल निर्वाह करती है तो राम भी एक आदर्श पति से किसी प्रकार कम नहीं रहते। पारिवारिक समन्वय का अद्‌भूत आदर्श अन्यत्र दुर्लभ है।

३.२.११ मानव संस्कृति का समन्वय :

तुलसी के काव्य में विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय हुआ है। इस सम्बन्ध में डॉ. उदयभानु सिंह का कथन दृष्टव्य है - "तुलसी-साहित्य में पाँच भिन्न जातियों के पात्रों का चित्रण हुआ है - देव, दानव, नर, वानर और तिर्यक्। उनकी अपनी - अपनी संस्कृति है। इनकी संस्कृति का अंकन तुलसी ने किया है। इसके अतिरिक्त तुलसी साहित्य में मानव संस्कृति में समन्वय की भावना के दर्शन होते है। जैसे राजन्य वर्ग, वन पथ के जन-साधारण और कोल - किरातों की जीवन पद्धति में विषमता है। तुलसी ने राम के सम्बन्ध के द्वारा उन सभी का समन्वय प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही हिन्दु संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति का समन्वय भी किया है।"

३.२.१२ साहित्यिक समन्वय :

तुलसी हिन्दी जगत् में ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर अवतरित हुए थे कि उन्होंने धर्म, समाज, दर्शन, ज्ञान, भक्ति के क्षेत्र में तो समन्वय किया ही किन्तु इसके हाथ ही उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में भी समन्वय प्रस्तुत किया।

काव्य प्रयोजन की दृष्टि से तुलसी के काव्य में सुन्दर समन्वय मिलता है। काव्य के दो प्रमुख प्रयोजन माने जाते हैं - स्वान्त -सुखाय और परान्तः सुखाय। काव्य अपने लिए भी लिखा जाता है और दूसरों के लिए भी। प्रथम प्रकार के प्रयोजन के लिए लिखे जाने वाले काव्य में वैयक्तिकता अधिक होती है और द्वितीय प्रकार के काव्य में सामाजिकता। तुलसी स्वान्तःसुखाय रचना में प्रवृत्त होते हैं, परंतु उसमें वैयक्तिकता नाम मात्र को नहीं है। उनकी रचना जनता के लिए है, समस्त प्राणीमात्र के लिए है।

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के मुख्य छह मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं - रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य। तुलसी ने इनकी समन्वय सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से किया है। उनके काव्य में दसो रसों का सुन्दर समन्वय मिलता है। इनके काव्य में जहाँ एक और भक्ति की पावन गंगा है वहाँ दूसरी ओर उसमें श्रृन्गार की अमिट झांकियाँ भी है। तुलसी की प्रतिभा सार गृहिणी थी, उसमें भावपक्ष एवं कला पक्ष का समुचित समन्वय विद्यमान है।

तुलसी संस्कृत के महापंडित थे, किन्तु उन्होंने आम आदमी के कल्याण के लिए बोलचाल की भाषा अवधी को अपनी काव्य भाषा बनाया। उन्होंने स्पष्ट रूप में कहा -

"का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै कर कमाँच।।"

तुलसी ने 'मानस' में बीच-बीच में प्रसंगानुकूल संस्कृत के श्लोकों की रचना कर 'देववाणी' और जनभाषा अवधी में समन्वय स्थापित किया है। साथ ही उन्होंने 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली' और 'कवितावली' की रचना ब्रजभाषा में की है।

तुलसी ने भाषा के साथ शैली में भी अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। साथ ही छन्दों का विविधमुखी प्रयोग करके उसमें भी समन्वय करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने सोहर, दोहा, चौपाई, कवित्त, बरवै तथा गीत आदि सभी छन्दों का समन्वित प्रयोग अपने काव्य में किया है। तुलसी ने अपने काव्य में सभी प्रचलित छन्दों के साथ अलंकार के क्षेत्र में भी समन्वय किया है।

३.३ सारांश

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि तुलसी अद्भुत समन्वयकारी व्यक्तित्व लेकर पैदा हुए थे। उनका समस्त काव्य समन्वय की विराट-चेष्टा का काव्य है। रामचरितमानस उनका एक ऐसा महान ग्रन्थ है, जिसमें विभिन्न प्रकार के विरोधी और विषम तत्वों में समन्वय स्थापित करने का सहज प्रयत्न किया गया है। गोस्वामीजी ने अपने युग की परिस्थितियों का गहन अध्ययन

किया था। उन्होंने विषमता तथा वैमनस्य को दूर करने का निश्चय किया था, इसीलिए उन्होंने मानस में समन्वय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया है। मानस का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ तो विभिन्न ध्रुवों की कटुता, तीक्ष्णता और विरोधी आचरणों मे समन्वय की विराट चेष्टा का प्रयत्न मात्र है। उन्होंने धर्म, राजनीति, समाज, दर्शन, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय की भावना स्थापित की। इन विभिन्न क्षेत्रों मे समन्वय स्थापित करते हुए जीवन में व्याप्त घोर अशांति, पापाचार, अनाचार, असहिष्णुता, अधार्मिकता और विषमता को दूर करने का प्रयास किया।

३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. "तुलसी का समस्त काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।" इस उक्ति की उदाहरणसहित विवेचना कीजिए।

२. "गोस्वामी तुलसीदास अपने समय के सबसे बड़े लोकनायक थे। बुद्धदेव के पश्चात भारत के वे ही सबसे बड़े लोकनायक हैं।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

३. तुलसीदास के समन्वयवाद पर प्रकाश डालिए।

३.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. 'तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है' किसका कथन है ?

२. तुलसीदास ने अपने समय के समाज में व्याप्त विषमता एवं वैमनस्य को दूर करने के लिए किस प्रवृत्ति को अपनाया ?

३. शैव और वैष्णवों में सौहार्द्र स्थापित करने के लिए तुलसी ने राम के मुँह से किसकी प्रशंसा करवाई है ?

४. रामचरितमानस में सीता को किसकी शक्ति बताया है ?

५. रामावत सम्प्रदाय में परब्रह्म राम के कितने रूप माने गये हैं ?

६. रामानुजाचार्य ने किस वाद की स्थापना की ?

७. तुलसीदास के मतानुसार कौन भक्तों के प्रेमवश सगुण रूप में प्रकट होते हैं ?

८. तुलसीदास ने अपने राम में किसका सुन्दर समन्वय किया है ?

९. तुलसीदास के अनुसार जिस राजा के राज्य में प्रजा दुख पाती है वह राजा किसका भागी बनता है ?

१०. तुलसीदास ने मानस की रचना के लिए किसे काव्य भाषा के रूप में अपनाया ?

३.६ संदर्भ ग्रंथ

१. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह

२. तुलसी - सं. उदयभानु सिंह

३. तुलसी की साहित्य साधना - डॉ. लल्लन राय

४. रामचरितमानस - सं. सुधाकर पाण्डेय

५. विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य - डॉ. रामाप्रसाद मिश्र

६. कबीर, सूर, तुलसी - डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

७. मध्यकालीन काव्य का पुनर्पाठ - प्रो. करूणाशंकर उपाध्याय

८. तुलसीदास - श्रृंखला संपादक - अजय तिवारी, सं. विवेक निराला

❖❖❖❖

munotes.in

४

तुलसीदास की भक्ति भावना

इकाई की रुपरेखा :

४.० इकाई का उद्‌देश्य
४.१ प्रस्तावना
४.२ तुलसीदास की भक्ति भावना
 ४.२.१ भक्ति का स्वरूप
 ४.२.२ भक्ति की श्रेष्ठता
 ४.२.३ नवधा भक्ति
 ४.२.४ भक्ति के साधन
४.३ सारांश
४.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न
४.५ लघुत्तरीय प्रश्न
४.६ सन्दर्भ ग्रन्थ

४.० इकाई का उद्‌देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषय वस्तु के अध्ययन से अध्येता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश निहित है -

- तुलसीदास की भक्ति भावना की जानकारी देना।
- तुलसीदास के सर्वश्रेष्ठ राम भक्त व्यक्तित्व का परिचय कराना।

४.१ प्रस्तावना

तुलसीदास का युग भक्ति आन्दोलनों का युग था। उस युग में हिन्दी कविता का प्रवाह राजनीतिक क्षेत्र से हटकर भक्तिपथ और प्रेमपथ की ओर चल पड़ा था। देश में मुस्लीम साम्राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने पर वीरोत्साह के सम्यक संचार के लिए वह स्वतंत्र क्षेत्र न रह गया, देश का ध्यान अपने पुरुषार्थ और बल पराक्रम की ओर से हटकर भगवान की शक्ति और दया-दाक्षिण्य की ओर गया। देश का वह नैराश्य काल या जिसमें भगवान के सिवाय और कोई सहारा दिखाई नहीं देता था। आ. रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'रामानन्द और वल्लभाचार्य ने जिस भक्ति रस का प्रभूत संचय किया, कबीर और सूर आदि की वाग्धरा ने

उसका संचार जनता के बीच किया। साथ ही कुतुबन, जायसी आदि मुसलमान कवियों ने अपनी प्रबन्ध-रचना द्वारा प्रेम-पथ की मनोहरता दिखाकर लोगों को लुभाया। इस भक्ति और प्रेम के रंग में देश ने अपना दु:ख भुलाया, उसका मन बदला।'

तुलसी युग में सगुण भक्ति की दो प्रमुख धाराएँ प्रवाहित थी - कृष्ण - भक्ति और राम - भक्ति। तुलसीदास सगुणोपासक रामभक्त थे। उन्होंने युगधर्म को पहचाना और युग की आवश्यकता के अनुसार रामभक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया। वे व्यक्तिगत मोक्ष के साथ ही लोक-कल्याण के भी अभिलाषी थे। उन्होंने अनुभव किया कि लोकसंग्रह के लिए निर्विशेष - निर्गुण ब्रह्म निरर्थक है। विश्व को ऐसे ब्रह्म या ईश्वर की आवश्यकता है जो दीन-दु:खियों की पुकार सुन सके, तत्काल पहुँचकर उनकी रक्षा कर सके, अधर्म का नाश करके धर्म की प्रतिष्ठा कर सके। परिस्थिति का आग्रह था कि जनता को रासलीला-विलासी-मुरलीधर कृष्ण की नहीं, अपितु लोकरक्षक - वर्णाश्रम - धर्म पालक - धनुर्धर राम की आवश्यकता है। अत एवं उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की दास्यभक्ति का गौरवगान किया।

४.२ तुलसीदास की भक्ति भावना

हिन्दी साहित्य के मध्य युग में भक्ति भगीरथी की जो अनेक धाराएँ प्रवाहित होकर जन-मन की क्लाँति को मिटाकर शांति में अवगाहन करा रही थी, उनमें सबसे गहन-गम्भीर धारा तुलसी की थी। उन्होंने सर्व व्यापक निरंजन, निर्गुण एवं अज ब्रह्म को जो भक्ति प्रेम वश दशरथ जाया कौसल्या के गर्भ से अवतरित हुआ था, अपना आराध्य चुना। नि:स्सन्देह तुलसी हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठतम रामभक्त कवि हैं। उनके लिए भक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से भी बढ़कर है। वह पंचम पुरुषार्थ हैं। तुलसी का भक्तिमार्ग सर्वजन कल्याणकारी है। वे भक्ति के पाँच भावों - शान्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य और माधुर्य में से दास्य को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। इसी कारण उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की दास्यभक्ति का गौरवगान किया है। वे राम के एक निष्ठ भक्त हैं, सेवक हैं, प्रेमी हैं। उनके लिए -

"एक भरोसो, एक बल, एक आस बिश्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।।"

४.२.१ भक्ति का स्वरूप :

'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज् सेवायाम्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है - भजना। भागवतकार ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है - "मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान श्रीकृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरंतर बनी रहे।" नारद भक्ति सूत्र में भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है - "सात्वास्मिन पर प्रेमरूपा, अमृत स्वरूपा च।" अर्थात भक्ति परम प्रेममयी तथा अमृत स्वरूपिणी है। आगे नारद ने लिखा है - "उपलब्धा प्रमाण सिद्धो भवति, अमृतो, तृप्तो भवति।" अर्थात् भक्ति को प्राप्त करके भक्त या साधक सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है।

नारद ने भक्ति के दो रूप माने हैं - प्रेम रूपा और गौणी रूपा। प्रेम रूपा भक्ति के भी दो उपभेद बताये गये हैं - कामरूपा और सम्बन्ध रूपा। काम रूपा भक्ति में एक ही भाव की प्रधानता रहती है, जबकि सम्बन्ध रूपा भक्ति में दास्य, सख्य, वात्सल्य और आत्मनिवेदन आदि भाव आ जाते हैं।

munotes.in

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - "भक्ति धर्म का रसात्मक रूप है।" उन्होंने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। सभी भारतीय भक्ति आचार्यों के मतानुसार भगवान के प्रति परम प्रेम का नाम ही भक्ति है। तुलसी के मतानुसार भी भक्ति प्रेम-स्वरूप है, राम के प्रति प्रीति ही भक्ति है -

"प्रीति राम सों नीति पथ चलिय रागरिस जीति।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति।।"

तुलसी के आराध्य भगवान राम त्रसित, पीड़ित जन को कष्टों से मुक्त कर देते हैं। उनकी अमित अरिमर्दन करनेवाली शक्ति ह्रदय को विश्वास से आपूरित कर देती है। इसी कारण तुलसी ने आराध्य के रूप में श्री राम का वरण किया है। भक्त के गुणगान से प्रसन्न होने वाले राम के प्रति अनन्य भक्ति होना तुलसी जैसे भक्त के लिए स्वाभाविक था। उन्होंने राम के प्रति ही अपनी एकमात्र भक्ति व्यक्त करते हुए कहा है -

"नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी।"

"तुलसी चाहत जनम भरि राम चरण अनुराग।"

राम चाहे ब्रह्म हैं, चाहे मानव प्रत्येक दशा में तुलसी के वे ही आराध्य हैं। वे तो केवल राम की भक्ति चाहते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हों कोई कामना नहीं है। क्योंकि 'भक्ति के बदले उत्तम गति मिलेगी, भक्त के लिए भक्ति का आनन्द ही उसका फल है।'

तुलसी 'सिय राम सरूप अगाध अनूप जल' के लिए लोचनों को मीन बनाने, कानों से राम कथा सुनने, मुख से राम नाम जपने, ह्रदय में राम को निवासित कराने, बुद्धि को राम में रमाने, राम तक ही अपनी गति रखने, राम से प्रेम करने एवं राम के बल का ही आधार रखने को जीवन का फल मानते हैं। वे दास्य-भाव की भक्ति को ही भव-सागर तरने के लिए आवश्यक समझते हैं -

"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।"

दास्य भक्ति में इष्टदेव की महत्ता, उदारता, दयालुता, भक्त शरणागत-वत्सलता तथा दीनबन्धुता और अपनी दीनता, हीनता, असमर्थता का सदैव ध्यान रहता है, जिससे ह्रदय का कल्मष धुलता है, आत्मा को पावन-भास्वरता प्राप्त होती है। इसी कारण तुलसी ने दास्य भाव की भक्ति को ही स्वीकार किया है।

तुलसी भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए विविध उपायों का अवलम्बन ग्रहण करते हैं। वे अपनी हीनता की अभिव्यक्ति द्वारा ह्रदय को मुक्त रूप से राम के समक्ष उपस्थित करने के साथ उनकी गुण महिमा का गान करने उन्हें रिझाने का प्रयत्न करते हैं। वे उन्हें जगत् में बिना सेवा के दीन पर द्रवित होनेवाला महान् उदार, सच्चा दान शिरोमणि, प्रीति-रीति का निर्वाहक, दीन हीतकारी, धनाधीशों और गणमान्यों की उपेक्षा करके दीन पर कृपा करने वाला निरुपित करते हैं -

"मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित, तुम पतित, दोउ बानक बने।।"

तुलसीदास भगवान राम की सगुण भक्ति के उपासक थे। उन्होंने निर्गुण भक्तों द्वारा भगवान को अन्तःकरण के भीतर देखने के स्थान पर जगत् के बीच रखकर देखने पर बल दिया है।

"अन्तर्जामिहु ते बड़ बाहिरजामीं है राम, जो नाम लिए तें।"

उन्होंने भक्ति का जो रास्ता सुझाया, उस पर चलना सब के लिए सुलभ है। सरलता इस भक्ति मार्ग का लक्षण है, मन की सरलता, वचन की सरलता और मार्ग की सरलता -

"सूधे मन सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति।।"

भक्ति भावना में लीन होने पर भक्त को सारा जगत् 'राम-मय' दिखता है और वह सबके प्रति अपनी विनम्रता प्रकट करता है -

"सीय राम मय सब जग जानी।
बरउँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।"

तुलसी की भक्ति निष्काम भाव की है। भक्ति साधन और साध्य दोनों हैं। भक्ति का आनन्द ही उसका फल है। राम के सानिध्य में आने पर सुग्रीव एवं विभीषण के भीतर यही ज्ञान जागता है। सुग्रीव कहते हैं -

"अब प्रभु कृपा करहु रहि भाँति। सब तजि भजन करौं दिन-राती।।"

तुलसीदास ने भक्ति के आलम्बन रूप में भगवान राम का जो स्वरूप लोक के समझ रखा, उसमें उनकी शील, शक्ति और सौन्दर्य तीनों विभूतियाँ हैं। उनके अलौकिक मनोहर रूप, अनुपम शील और अन्याय दमन में तत्पर शक्ति सम्पन्न रूप सबको बरबस आकृष्ट करता है और उसके प्रति ह्रदय में उत्पन्न सात्विक प्रेम भक्ति में बदल जाता है।

४.२.२ भक्ति की श्रेष्ठता :

सांसारिक जीव अनेक प्रकार के दुःखों से पीड़ित है। दुःख की निवृत्ति ही उसके सभी प्रयत्नों का प्रयोजन है। दुःख के प्रमुख दो कारण है - अज्ञान और अभक्ति। अतएवं दुःख से मुक्ति पाने के दो ही मूल उपाय हैं - ज्ञान और भक्ति। इस दृष्टि से दोनों समान हैं। तुलसी के मतानुसार -

"भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा।।"

तथापि ज्ञान की अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है। इसके अनेक कारण हैं। तुलसी के अनुसार अभक्ति ही सभी विपत्तियों का प्रमुख कारण है -

"कह हनुमंत विपत्ति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजनु न होई।"

भक्ति भगवान को सदैव प्रिय है, इसीलिए नर्तकी -रूपा माया उसके सामने शक्तिहीन है -

"पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी।
माया खलु नर्तकी बिचारी।।"

भक्ति का द्वार सबके लिए खुला है, नर, नारी, जीव, चराचर सभी के लिए -

"पुरुष, नपुंसक नारी बा जीव चराचर कोई।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।"

वह स्वतंत्र और अन्य साधनों के लिए भी आवश्यक है -

"सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि अधिन ज्ञान विज्ञाना।।"

वह सद्य:फलदायक, सुखद और सुलभ है -

"जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोरि पुरान श्रुति गाई।।"

उसमें असफलता का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि वह साधन भी है और सिद्धि भी - "साधन सिद्धि रामपद नेहू।"

४.२.३ नवधा भक्ति :

आराध्य या भजनीय के स्वरूप - भेद से भक्ति दो प्रकार की होती है - निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति। निर्गुण भक्ति ज्ञानवादियों की निराकार विषयक भक्ति है और सगुण भक्ति का सम्बन्ध साकार भगवान के रूप, गुण, लीला, धाम आदि से है। तुलसीदास इन दोनों प्रकार की भक्ति को मान्यता देते हैं। उनके अनुसार -

"सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"

वे निर्गुण भक्ति और सगुन भक्ति में समन्वय उपस्थित करते हुए कहते हैं -

"अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।"

भक्ति के जितने भी वर्गीकरण शास्त्रों में किये गये हैं उनमें भागवत की नवधा-भक्ति सबसे अधिक लोकप्रिय है। वह इस प्रकार निरुपित हुई है -

"श्रवण कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वदनं दास्यं सरण्यमात्मनिवेदनम्।।"

अर्थात श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन ये भक्ति के प्रमुख नौ अंग है।

गोस्वामी तुलसीदास ने इस नवधा भक्ति के विविध अंगों की विभिन्न स्थलों पर प्रसंगानुसार चर्चा की है -

munotes.in

श्रवण :

सगुन अथवा निर्गुण भगवान के प्रतिपादक शब्द का कान द्वारा ग्रहण और बोध 'श्रवण' कहलाता है। तुलसी का कथन है कि जो कान भगवान का गुणगान नहीं सुनते वे साँपों के बिल के समान हैं -

"जिन्ह हरि कथा सुनि नहिं कान।।
श्रवणरंध्र अहिभवन समाना।।"

कीर्तन :

सगुण अथवा निर्गुण भगवान के बोधक शब्द का उच्चारण 'कीर्तन' है। सगुण-भक्त के लिए भगवान के नाम, लीला, गुण, धाम आदि का उच्चारण कीर्तन है। तुलसीदास के अनुसार जो राम नाम का गुणगान नहीं करता उसकी जिह्वा मेंढ़क की जिह्वा के समान है -

"जो नहिं करै राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना।।"

स्मरण :

भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला आदि की स्मृति 'स्मरण' है। भवसागर पार करने के लिए राम का स्मरण मात्र पर्याप्त है। तुलसीदास के मतानुसार -

"सुमिरत श्री रघुवीर की बाहैं।
होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत भाहैं।।"

पादसेवन :

भगवान और उनके भक्तों की सेवा, मन्दिर - गमन, तीर्थ-यात्रा आदि 'पादसेवन' है। तुलसीदास का कहना है -

"कर बित करहि राम पद पूजा। राम भरोसं ह्रदय नहिं दूजा।
चरन राम तीरथ चलि जाही। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।"

अर्चन :

भगवान की विधिवत पूजा 'अर्चन' है। तुलसीदास की रचनाओं में भगवान् या उनकी मूर्ति की पूजा के अनेक स्थल हैं। स्वयं राम ने शिव का विधिवत् पूजन किया है -

"पूजि पारधिव नायेउ माथा।"

सीता ने भवानी की पूजा की है -

"तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चलीं।"

वन्दन :

'वन्दन' का अर्थ प्रणाम, नमस्कार या स्तुति है। 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका' आदि में बहुसंख्य वन्दनाओं एवं स्तुतियों की निबंधना करके तुलसी ने भक्ति की इस विधा को गौरव प्रदान किया हैं।

दास्य :

भगवान को स्वामी और स्वयं को दास समझना 'दास्य भाव' हैं। तुलसी के आदर्श भक्त सदैव इसी मन:स्थिति की कामना करते हैं -

"अस अभिमान जाइ जनि भोरें। मैं सेवक रघुपात पति मोरें।।"

तुलसी की भक्ति - पद्धति सेवक - सेव्य भाव की दास्य - भक्ति है। इसीलिए चिंतन के क्षेत्र में ब्रह्म और जीव को अभेद मानते हुए भी उन्होंने भक्ति के लिए, व्यावहारिक दृष्टि से ब्रह्म और जीव में भेद माना है। इस भेदभाव से ही उपासना भक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। भक्ति के लिए तुलसी ने श्रद्धाभाव को आवश्यक माना है। समान की समान के प्रति श्रद्धा नहीं हो सकती, अतः भक्ति के लिए भगवान और भक्त में असमानता का होना आवश्यक है। इसीलिए तुलसी ने भगवान् को स्वामी तथा स्वयं को या भक्त को सेवक माना है। तुलसी ने अपने इस मान्यता का उल्लेख इस प्रकार किया है -

"सेवक सेन्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।"

सख्य :

इस भक्ति में आराध्य के प्रति बन्धुभाव का प्राधान्य रहता है। यह भावना विश्वास की परिणति है। तुलसीदास 'दास्य-भाव' को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, अतः उनके साहित्य में 'सख्य-भाव' का निरूपण नगण्या-सा है। 'विनयपत्रिका'के जिन पदों में उन्होंने राम को खरी-खोटी सुनाई हैं, वे विश्वास-सख्य के उदाहरण माने जा सकते हैं। उनमें भक्त ने अपने भक्ति भाव का सखा की भाँति अनौपचारिक ढंग से निवेदन किया है।

आत्मनिवेदन :

भक्त के द्वारा भगवान के प्रति सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण ही आत्म-निवेदन है। भगवान की शरण में पहुँचकर भक्त चिन्तामुक्त हो जाता है। इस शरणागति की छः विधाएँ बतलाई गयी हैं -

१) भगवान के अनुकूल रहने का संकल्प -
यथा - "तुमहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई।।"

२) उनकी प्रतिकूलता का त्याग -
यथा - "जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो घाँडिये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।"

३) रक्षक भगवान में विश्वास -
यथा - "सुमिरत श्री रघुवीर की बाहैं।
करि आई करि हैं करती हैं तुलसीदास दासनि पर अहैं।।"

४) रक्षक भगवान का वरण -
यथा - "ताहि तें आयो सरन सबेरें।
तुलसीदास यह बिचति कागुरौ तुम्हहिं सों बनै निबेरें।।"

५) आत्मनिपेक्ष या आत्म-समर्पण -
यथा - "तुलसीदास निज भवनद्वार प्रभु दीजै रहन परयो।"

६) कार्पण्य अर्थात अत्यन्त दीनता -
यथा - "तुम संग दीनबंधु न दीन कोउ मो सम सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिल मौलिमनि नहिं जग तुम सम हरिन हरन कुटिलाई।।"

दूसरे प्रकार की नवधा-भक्ति 'अध्यात्मरामायण' में प्रतिपादित की गयी है। तद्नुसार 'रामचरितमानस' में रामने भी शबरी के प्रति नवधा-भक्ति का उपदेश दिया है -

नवधा भगति कहीं तोहि पाहीं। सावधान सुनि धरु मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुनगान करह कपट तजि गान।।
मंत्र जाय मम दृढ़ बिश्वासा। पंचन भजनु सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवें सम मोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा।।
आठवें जथा लाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।
नव महु एकौ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोई अतिसय भामिनि प्रिय मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस नवधा-भक्ति में विधि विधान की उपेक्षा की गयी है और भक्ति-सम्बन्धी व्यापक मूलभूत सिद्धातों का ध्यान दिया गया है। अतः सभी लोग तुलसी की इस भक्ति के अधिकारी है।

४.२.४ भक्ति के साधन :

नवधा भक्ति के श्रवण आदि एवं सत्संग आदि अंग भक्ति के साधन भी हैं और भक्ति-भाव की अभिव्यक्तियाँ भी। जब तक भक्ति का उदय नहीं होता तब तक वे साधन हैं। भक्ति का उदय हो जाने पर किया गया कथा-श्रवण आदि भक्ति की अभिव्यक्ति है। भक्ति के सभी साधनों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है -

अ) कृपा-साधन
आ) विहित साधन और
इ) अविहित साधन

तुलसी ने राम-भक्ति की प्राप्ति के लिए स्वयं राम, गुरु, सन्तों, देवों और द्विजो की कृपा की आवश्यकता पर बल दिया है -

"सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। रामकृपा काहूँ एक पाई।।
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइये।।"

उपरोक्त नवधा-भक्ति के अंग ही विहित साधन है। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि वैराग्य, भोग और ज्ञान भी इसी वर्ग के अन्तर्गत हैं। विहित मार्ग का अनुसरण करते हुए धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग, योग से ज्ञान और ज्ञान से भक्ति की प्राप्ति होती है। तुलसी ने बतलाया है कि पुराण आदिं में वर्णित राम -कथा के अनुशीलन से ज्ञानी और विरक्त जन राम-भक्ति प्राप्त करते हैं -

"पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उरगारी।।
भाव सहित खोजै जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुखखानी।।"

प्रेम किसी प्रकार के विधान को नहीं मानता। मानव मन का यह स्वभाव है कि वह अपने सम्बन्धियों में अधिक अनुरक्त रहता है। ये रागात्मक वृत्तियाँ भक्ति के मार्ग में बाधक हैं। इनका उदात्तीकरण अपेक्षित है। भगवान को सभी चित्त-वृत्तियों का आलम्बन बना देना श्रेयस्कर है। इस प्रकार भगवान के साथ रागात्मक सम्बन्धों की स्थापना अविहित साधन है। जो भगवान को ही अपना पिता, माता, बन्धु आदि समझने लगता है, वह उनका स्नेह पात्र बन जाता है। तुलसी ने कहा है -

"जननी, जनक, बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवनु सुहद परिवारा।।
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।
समदरसी ईष्ठा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी ह्रदय बसै धनु जैसें।।"

तुलसी लोकधर्मी थे। उन्होंने व्यक्ति-कल्याण के साथ लोक-कल्याण करनेवाले भक्ति मार्ग का उपस्थापन किया। उन्होंने लोकधर्म-विरोधी भक्ति-पद्धतियों का सच्चाई के साथ विरोध किया। 'रामचरितमानस' आदि ग्रन्थों के रूप में उन्होंने भक्ति-रस का वह साहित्य निर्मित किया जिसने देश-काल की सीमा को पार करके करोड़ों नर - नारियों की जीवनधारा को राममय बनाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - "उनकी वाणी के प्रभाव से आज भी हिन्दु भक्त अवसर के अनुसार सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, सन्मार्ग पर पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य धारण करता है, कठिन कर्म में उत्साहित होता है, दया से आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानी करता है, शिष्टता का अवलम्बन करता है और मानव जीवन के महत्त्व का अनुभव करता है।"

४.३ सारांश

तुसलीदास ने अपनी दास्य भक्ति के द्वारा अपने आराध्य राम के शक्ति, शील और सौन्दर्य से परिपूर्ण जिस रूप का भारतीय जन-मानस से जो परिचय कराया वह अद्‌भूत है। तुलसी की करूणा भरत और कौसल्या के चित्रण में दिखाई देती हैं, उनकी मानवीय सहानुभूति निषाद, शबरी, सीता से प्रश्न करनेवाली ग्राम वधुओं आदि के सन्दर्भ में दिखाई देती है। तुलसी की नैतिकता का यही स्त्रोत है। तुलसी के लिए सबसे बड़ा धर्म है, दीनों की सेवा और सबसे बड़ा पाप है, उनका उत्पीड़न -

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

तुलसी के इष्टदेव आदर्श कर्मवीर हैं। वे साधारणतया युद्ध नहीं करते, अपने तीर तरकस में ही रखते हैं किन्तु उनकी प्रतिज्ञा है -

जो रन हमें प्रचार कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ।।

तुलसी के आराध्य राम हैं। भगवान के सभी अवतारों में उनके लोक रक्षक रूप की सर्वाधिक अभिव्यक्ति राम में की हुई है, उनमें ही भगवान् की तीन भरती विभूतियों - शील, शक्ति और सौन्दर्य - का पूर्ण रूप एकत्र देखने को मिलता है। अतएवं वे राम भजन को राजमार्ग मानते हैं -

"गुरु कल्यौ राम भजन मोहि नीको लगत राजड़गरो सो।।"

४.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. तुलसीदास की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।

२. 'तुलसी का भक्ति-मार्ग व्यक्ति-कल्याण के साथ लोक-कल्याण का मार्ग है' इस कथन की विवेचना कीजिए।

४.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. नारद भक्ति सूत्र के अनुसार भक्ति का स्वरूप कैसा है?

२. तुलसीदास की भक्ति किस भाव की है?

३. तुलसीदास भव-सागर तरने के लिए किस भाव की भक्ति को आवश्यक मानते हैं?

४. तुलसीदास के अनुसार सभी विपत्तियों का प्रमुख कारण क्या हैं?

५. तुलसीदास के अनुसार जो कान भगवान का गुनगान नहीं सुनते वे किसके समान हैं?

६. तुलसीदास के अनुसार जो राम नाम का गुनगान नहीं करता उसकी जिह्वा किसके समान है?

७. तुलसीदास की भक्ति पद्धति किस प्रकार की है?

८. आत्म-निवेदन का क्या अर्थ है?

९. रामचरितमानस में राम ने किसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया है?

१०. भक्ति के सभी साधनों को विद्वानों ने किन तीन वर्गों में रखा है?

४.६ संदर्भ ग्रंथ

१. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह

२. तुलसी - सं. उदयभानु सिंह

३. मध्यकालीन काव्य का पुनर्पाठ - प्रो. करूणाशंकर उपाध्याय

४. कबीर, सूर, तुलसी - डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

५. तुलसी की साहित्य साधना - डॉ. लल्लन राय

६. रामचरितमानस - सं. सुधाकर पाण्डेय

७. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि - डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना

८. तुलसीदास - श्रृंखला संपादक - अजय तिवारी, सं. विवेक निराला

❖❖❖❖

५

रामचरित मानस की कथावस्तु

इकाई की रूपरेखा :

५.० इकाई का उद्देश्य

५.१ प्रस्तावना

५.२ रामचरित मानस की कथावस्तु

५.३ रामचरित मानस की कथावस्तु की विशेषताएँ

५.४ सारांश

५.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

५.६ लघुत्तरीय प्रश्न

५.७ सन्दर्भ ग्रन्थ

५.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषय वस्तु के अध्ययन से आपको निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश्य निहित है -

- रामचरित मानस की कथावस्तु की जानकारी देना ।
- रामचरित मानस की कथावस्तु की विशेषताओं से परिचय कराना ।

५.१ प्रस्तावना

'रामचरित मानस' तुलसी दास का सुदृढ कीर्तिस्तंभ है। इसी के बल पर वे भारत के ही नहीं, संसार के महान कवियों में गिने जाते हैं। यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में ही नहीं समूचे विश्व साहित्य में निराले स्थान का अधिकारी है। यह वह अक्षय विभूती है जिसके कारण भारत केवल सम्पन्न ही नहीं है, गर्व से अपना सिर भी उपर उठाये हुए है। इस 'मानस' के गर्भ में किये हुए मोतियों की ज्योति से कितने ही मन-मन्दिर देदीप्यमान हुआ करते हैं । वह ज्योती दीन-हीन के झोपड़े में ही नहीं, महाराजाओं के प्रदीप्त प्रासादों में भी अपनी धवलिमा से तमराशि को धोया करती है। इस 'मानस' की लोल लहरियों में कितने ही हंस, बक, काक आदि अच्छे और बुरे सभी डुबकियाँ लगाया करते हैं। जो भले हैं, उनकी सात्विकता का विकास होता है और जो बुरे हैं उनका बाह्य और अभ्यन्तर दोनों मालिन्य के हट जाने से स्वच्छ हो जाते है, बक और काक भी हंस और पिक ही हो जाते है -

"मज्जन फलु पेखिअ ततकाला । काक होहिं पिक बकहु मराला ।"

munotes.in

'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य की विलक्षण धरोहर तथा सृजन तंत्रों के बहुविध आयामों से बुनी हुई - व्यापक लोक संबंधित बहुविध अनुभवों के बीच निर्मित एक आस्थावान कवि की प्रतिभा का प्रमाण है । इसका प्रभाव और लोकप्रियता को देखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे उत्तर भारत का बाइबिल कहा है ।

५.२ रामचरित मानस की कथावस्तु

रामचरितमानस की कथावस्तु अत्यन्त सुगठित एवं सुव्यवस्थित है । इसमें अनपेक्षित एवं अनावश्यक विस्तार कही नहीं है । समुचा ग्रन्थ अंत:प्रेरित अनुशासन में बँधा हुआ है । तुलसीदास ने अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'मानस' शब्द को ध्यान में रखकर उसके संर्गो को 'सोपान' कहा है, लेकिन जनता वाल्मीकिय रामायण के प्रभाव से उन्हें 'काण्ड' कहना ही पसंद करती है । मानस की कथा सात काण्डो-बालकाण्ड. अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंका काण्ड और उत्तरकाण्ड में विभाजित हैं ।

रामचरितमानस का शुभारम्भ मंगलाचरण तथा गुरु वन्दना से होता है । तुलसी इतने उदार मना है कि वे ब्राह्मणों, सत्तों के साथ-साथ खल वन्दना से भी नहीं चूकते । वे वाल्मीकि, कवियों, वेद, ब्रह्मा, देवताओं, शिव पार्वती आदि की तन्मय होकर वन्दना करते हैं । वे मानस का रूप और महात्म्य वर्णित करने के साथ-साथ, याज्ञवल्क्य - भारद्वाज संवाद, सती कन्या, कामदेव का देवकार्य के लिए जाना और भस्म होना, शिव - पार्वती विवाह इत्यादि का आधोपान्त वर्णन करते हैं ।

रामचरितमानस का प्रथम सोपान 'बालकाण्ड' में तुलसीदास शिवपार्वती संवाद के अन्तर्गत रामावतार का हेतू बतलाते हैं । साथ ही मनुशत रूपा भानुप्रताप की कथा, रावण आदि का जन्म, तपस्या और उसके ऐश्वर्य तथा अत्याचार का सविस्तर वर्णन करते हैं । इसके साथ ही पृथ्वी और देवतादि की करुण पुकार, भगवान का वरदान, राजा दशरथ का पुत्रेष्टी यज्ञ, रामजन्म तथा बाललीला का पूरी संजीदगी के साथ चित्रण करते है । इसके पश्चात विश्वामित्र का मिलना, अहिल्या उध्दार प्रसंग, श्रीराम-लक्ष्मण का जनकापुर आवलोकन, पुष्प-वाटिका प्रसंग, धनुष भंग, परशुराम-लक्ष्मण संवाद, सीता राम का विवाह आदि का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन करते है । तत्पश्चात बारात के अयोध्या लौटने और अयोध्या में हुए आनन्दोत्सव के साथ बालकाण्ड समाप्त होता है । तुलसी बालकाण्ड के अन्त में श्रीरामचरित गाने-सुनने की महिमा का भी यथेष्ट वर्णन करते है ।

'अयोध्याकाण्ड' रामचरितमानस का द्वितीय सोपान है, जो मार्मिक स्थलों, भक्ति की उत्कटता, रमणीय प्रस्तुति तथा काव्यत्व की दृष्टि से मानस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सोपान है । तुलसी ने अयोध्या काण्ड में मंगलाचरण के पश्चात राम के राज्याभिषेक की तैयारी, सरस्वती की प्रेरणा से मंथरा की ईर्ष्या कैकया-मंथरा संवाद, कैकयी द्वारा वरदान माँगना, लक्ष्मण और सीता के साथ राम का वन गमन, राम केवट संवाद, दशरथ की मृत्यु, प्रयाग में भारद्वाज-राम संवाद, भरत का अयोध्या लौटना, भरत की ग्लानि, उनका चित्रकूट जाकर राम की चरण-पादुका प्राप्त करना, सिंहासन पर राम की चरण पादुका की प्रतिष्ठा करना, फिर नंदीग्राम में रहकर तपस्वी का जीवन बिताना इत्यादि प्रसंगो की विस्तृत चर्चा की है और अंत में भरत के उज्ज्वल चरित्र के श्रवण की महिमा का गान किया है -

"सुनि सुरमत सुर गुरु कहेउ भल तुम्हार अनुरागु ।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरण अनुरागु ।।"

'अरण्यकाण्ड' मानस के अन्य काण्डों की तुलना में छोटा काण्ड है । इसमें मंगलाचरण के अनन्तर तुलसीदास ने इन्द्रपुत्र जयंत के अभिमान और उसके दण्ड, अत्रि मिलन, सीता-अनुसया संवाद, विराध वध, पृथ्वी को निशाचरहीन करने की राम की प्रतिज्ञा, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य और जटायु से राम का मिलन, पंचवटी निवास, सूर्पणखा प्रसंग, मारीच वध, सीता हरण, कबन्ध उध्दार, शबरी उध्दार, राम-नारद संवाद आदि प्रसंगों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है और अन्त में सन्तों के लक्षणों का विवेचन करते हुए सतसंग की महिमा का आख्यान किया है ।

'किष्किन्धाकाण्ड' भी अरण्यकाण्ड की तरह छोटा काण्ड हैं जिसमें तुलसी ने मंगलाचरण के उपरान्त राम हनुमान मिलन, राम, सुग्रीव मैत्री, बालिवध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, सीता की खोज में वानरों का प्रस्थान, सम्पाती प्रसंग, समुद्र लाँघने का प्रस्ताव जामवंत की प्रेरणा से हनुमान जी का उत्साहित होना आदि प्रसंगों की सुन्दर योजना की है और अंत में राम के गुणों की चर्चा की है ।

'सुन्दरकाण्ड' उक्त दोनों काण्डों की तुलना में आकार में थोड़ा बड़ा है । इसका नाम सुन्दरकाण्ड इसलिए रखा गया है कि इसमे अनेक सुन्दर घटनाएँ घटती है, जैसे हनुमान द्वारा समुद्र को लाँघना, सुरसा भेंट, छायाग्राही दानवी का वध, लंकिनी पर प्रहार, हनुमान-विभीषण संवाद, अशोक वाटिका में सीता के दर्शन, सीता-त्रिजटा संवाद, हनुमान-सीता संवाद, लंकादहन, हनुमान का चूड़ामणि के साथ लौटना, राम हनुमान संवाद, राम की वानर सेना का समुद्र तट पर आगमन, मंदोदरी-रावण संवाद, विभिषण का रावण द्वारा अपमान, विभिषण का राम की शरण में आना, रावण-दूत का प्रसंग, शुल्क द्वारा लक्ष्मण के पत्र को रावण के पास पहुँचाना, समुद्र पर राम का क्रोध इत्यादि प्रसंगों का मर्मस्पर्शी वर्णन तुलसी ने किया है । अंत में राम के गुणगान का महात्म्य है । कहने की आवश्यकता नहीं है कि सुन्दरकाण्ड के नायक हनुमान है ।

'लंका काण्ड' में तुलसीदास ने मंगलाचरण के पश्चात सेतुबंध, रामेश्वर की स्थापना, राम की सेना का समुद्र पार करना, रावण का आश्चर्यचकित हो जाना, मंदोदरी और प्रहस्त द्वारा रावण को समझाना, राम के बाण से रावण के मुकुट, छत्रादि का गिरना, मंदोदरी द्वारा राम की महिमा का बखान, रावण-अंगद संवाद, युध्द का आरम्भ, लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति का लगना, हनुमान द्वारा वैद्य सुषेण और संजीवनी बूटी का ले आना, राम भरत संवाद, कुंभ करण के साथ युध्द, लक्ष्मण-रावण युध्द, राम-रावण युध्द, विभीषण-रावण युध्द, रावण वध, मंदोदरी विलाप, विभीषण का राज्याभिषेक, सीता की अग्निपरीक्षा, इन्द्र द्वारा अमृत वर्षा, पुष्पक विमान द्वारा राम-सिता-लक्ष्मण का अयोध्या लौटना आदि प्रसंगो का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है । अंत में रामचरित की महिमा का गान किया है ।

'उत्तरकाण्ड' रामचरितमानस का अंतिम काण्ड है । यह काण्ड 'मानस' के अन्य सभी काण्डों से विस्तृत है । इसमें राम कथा का 'उपसंहार' है । इसके अंतर्गत कवि ने विविध प्रसंगो को स्थान दिया है । जैसे, इसमें राम का अयोध्या आगमन, भरत-मिलाप, राम राज्याभिषेक, विभीषणादि सखाओं की बिदाई, राम-राज्य, राम-प्रताप, संत-असंत लक्षण, राम द्वारा अपने पुरजनों को उपदेश, वशिष्ठ और राम का मिलन, राम-कथा महात्म्य, काकभुशुंडि-चरित्र, गरुड-मोर, काकभुशुंडि-गरुड संवाद, हरि-माया, शिवजी द्वारा दिये गये शाप की कथा, राम-काकभुशुंडि-संवाद, कालियुग-धर्म, ज्ञान-महिमा, भक्ति-चिन्तामणि का महत्व, ज्ञान और भक्ति का अन्तर, मानस-रोग, रामभक्ति की महिमा आदि प्रसंग आये है, जिन पर गोस्वामी तुलसीदास ने बड़ी तत्परता और तल्लीनता के साथ लिखा है । ये सभी प्रसंग जहाँ एक ओर गोस्वामीजी के मौलिक चिन्तन एवं विशद अध्ययन के परिचायक हैं वहाँ ये सभी प्रसंग संसार के

दु:ख-दग्ध मानवों के लिए अत्यन्त कल्याणकारी भी है । इन सभी प्रसंगो में भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल भाव-रत्नों की माला भी विद्यमान है और मानव-कल्याण हेतु उन बातों का भी निरूपण हुआ है, जिनको अपनाकर दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से पिड़ित मानव सहज ही मुक्ती प्राप्त कर सकता है ।

५.३ रामचरितमानस की कथावस्तु की विशेषताएँ

रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का आधार ग्रन्थ है । हिन्दी साहित्य का कोई महाकाव्य इसके समीप भी नहीं आ सकता । उसका सार्वभौम किंतु सरल भक्ति-वर्णन, उसका सर्वरस सम्पन्न काव्य-वैभव, उसका अनूठा अलंकरण, वस्तुतः उसका सर्वस्व अपना उपमान आप ही है। रामचरितमानस की कथा-योजना में पुराण, महाकाव्य और नाटक तीनों शैलियों का समायोजन तुलसी ने किया है । कथानक की प्रस्तुति के लिए चार वक्ताओं - शिव, काकभुशुण्डि, याज्ञवल्क्य और स्वयं तुलसीदास और चार श्रोताओं - पार्वती, गरूड, भारद्वाज और भूमण्डलवासी - का उपयोग किया गया है, जो सम्पूर्ण कथा का कथन एवं भूषण करते हैं । कथानक की विशद पुष्ठभूमि, प्रसंगो की सुव्यवस्थित योजना, जीवन के अन्यान्य प्रश्नों के समाधान का संधान, उदात्त मानवीय मूल्यों का प्रकाशन, महान उद्देश्य की सिध्दि का प्रयास, चरित्रों का क्रमिक विकास, विविध रसों का सुन्दर परिपाक, मर्यादावाद, समन्वयवाद और समुचित प्रभाव आदि सभी तत्व महाकाव्य की अपेक्षाओं के अनुकूल है । इसीप्रकार संवादो की योजना और गहन अनुभूतियों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति में मंचीय विशेषताओं का सहज समावेश हो गया है । इन तीनों शैलियों के सम्यक समायोजन से रामचरितमानस में विलक्षण प्रभावान्विति उत्पन्न हो गयी है ।

रामचरितमानस में तुलसी ने जिस राम कथा का वर्णन किया है वह 'नाना पुराण - निगमागम सम्मत' होने पर भी अन्य सभी राम कथाओं की अपेक्षा अपनी कतिपय विशिष्टताओं से परिपूर्ण है । 'मानस' के पूर्व की राम-कथा जो स्वरुप प्रचलित था उसके संबंध में अनेक प्रकार के प्रश्न उपस्थित किये जाने लगे थे । निर्गुणवादी सन्तों ने राम को विष्णु का अवतार मानने से इन्कार किया था । महात्मा कबीर ने "दशरथ सुत तिहि लोक बखाना, राम नाम को मर्म है आना" कहकर दशरथि राम के अस्तित्व को चुनौती दी थी। राम के अवतारी स्वरुप के संबंध में जो सम्भावित प्रश्न थे उन्हें तुलसीदासजी ने पार्वती, भारद्वाज और गरुड जैसे श्रोताओं के माध्यम से शिव, याज्ञवल्क्य एवं कागभुशुण्डि आदि वक्ताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया और इन्हीं के माध्यम से अपने समय में उठने वाले प्रश्नों का समाधान किया तथा सगुण भक्ति के सार्थक स्वरुप को प्रतिष्ठित किया । स्वयं तुलसीदास ने रामकथा को अति गूढ़ कहा है । 'मानस' की कथा की गूढ़ता यह है कि यह कथा लौकिक और माध्यमिक दोनों घरातलों पर समानान्तर रूप से विकसित होती है । इस कथा प्रवाह के लोग और वेद - दो मंजुल हैं । इसमें एक स्तर पर लौकिक जीवन की अन्यान्य व्यावहारिक कठिनाइयों के समाधान प्रस्तुत किये गये हैं तो दूसरी ओर आध्यात्मिक विकास की सरणियों को अलोकित किया गया है । 'मानस' अपने समकालीन समाज में व्याप्त धर्म और आध्यात्म सम्बन्धी भ्रांतियों का निर्मुलन करता हुआ आदर्श समाज की स्थापना करता है । राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, स्वामी-सेवक, ग्रामीण-नागरिक आदि सम्बन्धों के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा करता है । इसीलिए 'मानस' 'जीवन का महाकाव्य' कहलाने का अधिकारी है ।

विदेशी विद्वानों ने 'मानस' के वैश्विक महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसे विश्वकाव्य की संज्ञा दी है । इसका कारण यह है कि पहली बात तो यह है कि इस ग्रन्थ में जीवन के हर पहलू और मानव-स्वभाव की प्रत्येक संभव दशा का सफल निरूपण किया गया है । दूसरी बात यह है कि प्रसंगो अथवा भावों के अभिव्यन्जन में गोस्वामीजी के रागात्मक सामंजस्य ले अनूठी प्रत्ययकारिता उत्पन्न हो गई है । तीसरा कारण है मानव जीवन में मर्यादा की प्रतिष्ठापना । चौथा कारण है समन्वय की विराट चेष्टा । गोस्वामीजीने 'मानस' में निर्गुण-सगुण, शैव-वैष्णव, ज्ञान-भक्ति, लोक-वेद, समाष्टि-व्यष्टि, त्याग-भोग, विरक्ति, सामाजिक संसक्ति आदि का ऐसा सम्यक समन्वय स्थापित किया है कि परस्पर विरोधी दिखाई पड़नेवाले दृष्टिकोण परस्पर पुरक अथवा एक-दूसरे के सहायक प्रतीत होते है । तुलसी का समस्त काव्य समन्वय की विराट चेष्टा हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी का व्यापक अनुभव, गहन-ज्ञान, एकनिष्ठ भक्तिभाव, प्रतिभा सामर्थ्य, समन्वयवादी दृष्टिकोण, लोकमंगल की भावना, मर्यादावाद, उच्चतर जीवन मूल्यों में अटूट विश्वास, उदात्त सौन्दर्य बोध और विलक्षण काव्य कौशल्य, प्रबन्ध पटुता आदि अपने पूर्ण परिपाक के साथ रामचरितमानस में सगुण साकार हुआ है। इसीलिए रामचरितमानस हिन्दी में ही नही विश्व साहित्य में अपना अलग स्थान रखता है ।

५.४ सारांश

'रामचरितमानस' गोस्वामी तुलसीदास कृत अद्भूत काव्य है, जिसमें धर्म, नीति, दर्शन, पौराणिक वृत्ति, भक्ति आदि सभी आस्वाद्य हैं । 'मानस' द्वारा तुलसी ने जनता का जो कल्याण किया वह अमर है, अमिट है । लोकसंग्रह और समन्वय की प्रवृत्ति दिखलाकर उन्होंने समाज में फैली हुई विश्रृन्खलता को जिस प्रकार शांत किया है, उसके लिए सभी लोग उनके ऋणी है । इसी अमूल्यरत्न के कारण भारतीय अपने को सम्पन्न समझ सकते हैं । 'मानस' में अवगाहन करके सभी के मानस प्रफुल्ल होते है, इसमें सन्देह नहीं ।

५.५ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

१. रामचरितमानस की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए ।
२. रामचरितमानस की कथावस्तु की विशेषताएँ को विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

५.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१. तुलसीदास ने 'मानस' शब्द को ध्यान में रखकर सर्गों को क्या कहा है ?
२. रामचरितमानस की कथा कितने सोपानों में विभक्त है ?
३. तुलसीदास ने मानस के हर सोपान का आरम्भ किससे किया है ?
४. मानस के किस काण्ड में चित्रकूट सभा प्रसंग आता है ?
५. मानस के लिए काण्ड में बालिवध प्रसंग आया है ?
६. सुन्दर काण्ड के नायक कौन है ?

७. मानस के किस काण्ड में रावण वध प्रसंग आया है ?

८. मानसे के किस काण्ड में रामकथा का उपसंहार है ?

९. मानस की कथा में वक्ता-श्रोता की कितनी जोड़ियाँ है ।

१०.किस विद्वान ने रामचरितमानस को उत्तर भारत का बाइबिल कहा है ?

५.७ संदर्भ ग्रंथ

१. तुलसीदास - नंदकिशोर नवल
२. रामचरितमानस - तुलसीदास
३. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ.उदयभानु सिंह
४. तुलसी - सं. उदयभानु सिंह
५. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि - डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा
७. कबीर सूर तुलसी - योगेन्द्र प्रताप सिंह

❖❖❖❖

munotes.in

६

रामचरित मानस का महाकाव्यत्व

इकाई की रुपरेखा :

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ रामचरित मानस का महाकाव्यत्व

६.२.१ महत् उद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा

६.२.२ गुरुता, गम्भीरता और महानता

६.२.३ महत्कार्य एवं समग्र जीवन का चित्रण

६.२.४ सुसंगठित और जीवन्त कथानक

६.२.५ महान नायक तथा अन्य महत्वपूर्ण चरित्र

६.२.६ गरिमामयी उदात्त शैली

६.२.७ प्रभावान्विति तथा रस व्यंजना

६.२.८ जीवन शक्ति और प्राणवत्ता

६.३ सारांश

६.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.५ लघुत्तरीय प्रश्न

६.६ सन्दर्भ ग्रन्थ

६.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषय वस्तु के अध्ययन से अध्येता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश्य निहित है -

- रामचरित मानस के महाकाव्यत्व की जानकारी देना,
- रामचरित मानस के कालजयी प्रभाव एवं महत्त्व परिचय कराना ।

६.१ प्रस्तावना

प्रत्येक महान रचना देश एवं काल की सीमा में बध्द न होकर सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक होती है । ऐसी रचनाओं की काव्यशास्त्रीय परम्परा के नियमों एवं उपनियमों में नहीं बांधा जा सकता । संस्कृत काव्यशास्त्र में भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रह एवं आनन्दवर्धन

से लेकर विश्वनाथ तथा जनन्नाथ तक अनेक प्रख्यात आचार्यों ने प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रूप से महाकाव्य के लक्षण दिये हैं । आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य दर्पन' में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समाहार किया है । उनके आदर्श ग्रन्थ माघ, भारवि और श्रीहर्ष के महाकाव्य रहे हैं । उन्होंने अपने ग्रंथ में महाकाव्य के बाह्य और स्थायी लक्षणों का ही अधिक निर्देश किया है । उनके अनुसार महाकाव्य का स्वरुप इसप्रकार होता है -

महाकाव्य एक सर्गबध्द रचना होती है । उसका नायक धीरोदत्त गुणों से युक्त देवता अथवा सद्वंशजात क्षत्रिय भी हो सकता है । एक ही वंश के अनेक कुलीन नृप भी महाकाव्य के नायक बन सकते हैं । महाकाव्य में अंगीरस के रूप में श्रृंगार, वीर एवं शांत में से किसी एक की स्थापना होती है । अंग रूप से सभी रसों का विन्यास होता है । उनके कथानक में नाटक सन्धियों की स्थापना होती है । महाकाव्य का कथानक प्रख्यात इतिहास प्रसिध्द होता है । उसका लक्ष्य चतुवर्ग की प्राप्ति में निहित होता है । महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए, प्रत्येक सर्ग में छन्द परिवर्तन, प्रातः, संध्या, मृगया, वन-पर्वत एवं समुन्दर, सज्जन-दुर्जन की प्रशंसा-बुराई, सर्गान्त में आगामी कथा का संकेत तथा विभिन्न सर्गों का वर्णनीय कथा के अनुरूप नामकरण आदि होना चाहिए ।

पाश्चात आलोचक अरस्तु ने महाकाव्य के निम्न सात लक्षण बातये हैं -

१) विस्तृत एवं छन्दोबध्द कथानक,
२) अन्वितिपूर्ण विशिष्ट कार्य व्यापार
३) प्रख्यात घटना,
४) भद्र एवं शिव चरित्र
५) स्वाभाविक अलंकृति,
६) जीवन की विशालता एवं वैविध्य
७) नैतिक उद्देश्य की उपलब्धि ।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के महाकाव्य संबंधी लक्षणों को देखकर हम कह सकते हैं कि रामचरितमानस काव्य-कौशल्य एवं कला सौन्दर्य की दृष्टि से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है । महाकाव्य में जो महानता एवं उँचाई होनी चाहिए, 'मानस' में वह पूर्ण मात्रा में दिखाई देती है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "तुलसीदास ने रामचरितमानस की कथा को एक महाकाव्य के दृष्टिकोण से लिखा है जिसमें जीवन के समस्त अंग पूर्ण रूप से प्रदर्शित किये गये हैं ।" मानस में उत्कृष्ट महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट है -

६.२ रामचरित मानस का महाकाव्यत्त्व

६.२.१ महत् उद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य - प्रतिभा :

मानस की रचना का उद्देश्य महान है । इस कथा को कवि ने विभिन्न स्त्रोतों से एकत्रित किया है । नाना पुराण निगमागम संमत इस रामकथा की रचना के प्रयोजन और उद्देश्य के सम्बन्ध में तुलसी ने लिखा है -

"स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा, भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति ।"

इन पंक्तियों से तो यही प्रतीत होता है कि तुलसी ने 'मानस' की रचना आत्म-सुख या आत्म-बोध अथवा अपने हृदय के सन्देह और अन्धकार के शासन के लिए की थी । किन्तु उनके स्वान्तः सुखाय या आत्म-प्रबोध का तात्पर्य वैयक्तिक सुख या ज्ञान - लाभ नहीं है । तुलसी ने जिस साधना-मार्ग या उपासना पध्दति को अपनाया था, उसका मूलाधार ही लोक मंगल था । तुलसी का स्वान्तः सुख लोक मात्र का सुख था, क्योंकि उनका 'स्व' सारे जगत् में घुल मिल गया था । उन्होंने आत्मोत्सर्ग करके शेषजगत के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था । वे सारे संसार को राममय देखते थे । अतः जड़ चेतन के प्रति उनके मन में समान अनुभूति थी -

"जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।
बन्दौ सबके पद कमल सदा जोरि जुय पानि ।।"

सारा विश्व ही तुलसी के लिए आराध्य रूप था । अतः उनके काव्य का उद्देश्य स्वयं यही हो गया कि राम की सृष्टि में राम के गुणों का ही प्रसार किया जाना चाहिए । यह राम-कथा इस प्रकार की हो कि शत्रु और मित्र समान भाव से इसका श्रवण करें और समान भाव से ही इसकी प्रशंसा भी करें -

"सरल कवित्त कीरति विमल सोई आदरहिं सुजान ।
सहज भरू बिसराइ रिपु जो सुजहिं करहिं बखान ।।"

इससे स्पष्ट है कि कवि तुलसी का ध्यान स्वान्तः सुखाय के साथ-साथ सर्वजन हिताय था । इसलिए कवि ने लिखा है -

"मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की ।।"

गोस्वामी तुलसीदास ने लोक संग्रही दृष्टिकोन के माध्यम से जगत के कर्ता और संरक्षक ब्रह्म के सगुण रूप को आराध्य मानकर उसकी लीला को काव्य में इसप्रकार उपस्थित किया कि काव्य - कला और लोकमंगल दोनों का ही सामंजस्य हो गया । बालकाण्ड की स्तुति की प्रथम पंक्तियाँ 'मानस' के इसी उद्देश से प्रेरित होकर लिखी गयी है -

'वर्णनामर्थसंघानां रसनां छन्दसा मपि ।
मंगलानां चकर्त्तारौ वन्दे वाणि विनायको ।।'

इस स्तुति में गणेश का सम्बन्ध लोकमंगल से है तथा सरस्वती का लोकमंगल की भावना से। स्पष्ट है कि कवि का उद्देश्य लोकमंगल की महती भावना को लेकर ही काव्य रचना करने का है ।

'मानस' में राम के अवतार का कारण पृथ्वी को रावण अदि राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित होता बतलाया गया है । मानस के प्रारम्भ में ही रावण के अत्याचार के साथ-साथ अपने समय का राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक ऱ्हास और विधर्मियों के अत्याचार का वर्णन हुआ है । उत्तर काण्ड में काकभुशुंडि द्वारा कालिकाल का विस्तृत वर्णन, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक

एवं राजनैतिक ऱ्हास को दूर करने के लिए साधन रूप में राम नाम की महत्ता की स्पष्ट घोषणा की गई है -

"कलियुग जोग न जन्य न ग्याना । एक आधार राम गुन गाना ।"

तुलसी का यह दृढ़विश्वास है कि राम के अतिरिक्त अन्य देवी-देवता कलियुग के अत्याचारों का अन्त नहीं कर सकते । इसीलिए मानस में राम जैसे आदर्श नायक, हनुमान और लक्ष्मण जैसे रामभक्त और वीर, भरत जैसे नीतिपरायण पात्रों की अवतारणा की गई है । सप्तम सोपान यानि उत्तरकाण्ड में रामराज्य का जो चित्र उपस्थित किया गया है, वह राजनीतिक तथा सामाजिक आदर्शों की स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति करता है । रामचरितमानस की रचना का उद्देश्य रामभक्ति का प्रसार ही नहीं अपितु, लोककल्याण भी है । कहने का भाव यह है कि सेवा-धर्म द्वारा लोकहित की सिद्धि ही मानस का महान उद्देश्य है ।

महाकाव्य में चतुर्वर्ग के फल की प्राप्ति काव्य शास्त्रियों ने मानी है । मानस के जिस उद्देश्य की चर्चा ऊपर की गई है, पुरुषार्थ की दृष्टि से उसी को धर्म एवं मोक्ष कहा गया है । तुलसी ने स्वयं राम के मुख से धर्म के सर्वोत्तम स्वरुप की व्याख्या इस प्रकार करवाई है -

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।"

गोस्वामी तुलसी के अनुसार धर्म साधना का सरल और श्रेष्ठ मार्ग ज्ञान-योग युक्त वैराग्य है । इसे सेवक-सेव्यभाव भी माना जाता है । इस सम्बन्ध को स्थापित किए बिना इस संसार-सागर को पार नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार श्रध्दा और दास्य भावना से युक्त भक्ति की प्राप्ती और आदर्शवादी लोकप्रिय धर्म की प्रतिष्ठा रामचरितमानस का महान उद्देश्य है।

"अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ग्यान विग्यान विचारी ।।"

'मानस' के आरम्भ में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों फलों की सिध्दि की ओर संकेत दिया गया है । इसके विवेचन में धर्म को मुख्य स्थान दिया गया है । इससे मोक्ष का अपरोक्ष रूप से इसी के साथ सम्बन्ध हो जाता है । अर्थ और काम की कवि ने बराबर निन्दा की है । रामराज्य की स्थापना के उपरान्त कवि ने धर्मोपदेश देना और ज्ञान-विज्ञान, भक्ति और वैराग्य की विस्तृत व्याख्या करना आवश्यक समझा है । मानस का फल मोक्ष भी नहीं है, क्योंकि तुलसी ने कहा है -

"राम भजन सोई मुकति गुसाई । अन इच्छित आवै बरियाई ।।"

तुलसी के विचार से मुक्ति प्राप्त करने में वह सुख नहीं है जो विषम भवभीर से छुटकारा पाकर निरन्तर राम भजन में हैं -

"जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ।।"

अतः 'मानस' का फल मोक्ष नहीं है, अपितु अधर्म के नाश के उपरान्त रामराज्य की स्थापना और उसके विविध पक्षों की व्याख्या करते हुए धर्म की स्थापना करना है ।

महती प्रेरणा - जिस महान उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस युगप्रवर्तक महाकाव्य की रचना हुई है, उसकी मूल प्रेरणा-शक्ति भी उतनी ही बलवती और महती है । यह प्रेरणा शक्ति ब्रह्म का ब्रह्म सगुण स्वरूप है जिसके रूप, गुण और शील के सौन्दर्य से तुलसी का हृदय अभिभूत हो गया था ।

'मानस' की काव्य-सरिता का उद्गम-स्थल कवि का वह हृदय-रूपी मानसरोवर हैं जिसमें राम का यश-रूपी जल भरा हुआ है । साधु-सन्तों ने वेद-पुराणों का स्तर खींचकर राम के यश-रूपी जल भरा हुआ है । साधु-सन्तों ने वेद-पुराणों का स्वर खींचकर राम के यश-रूपी जल की जो वर्षा की उससे हृदय रूपी मानसरोबर जब पूर्णतया भर गया तो उसमें गोता लगाकर कवि की बुध्दि निर्मल हो गयी, उसके हृदय में उमंग की लहरें उठीं और प्रेम तथा आनन्द का प्रवाह कविता की धारा बनकर फूट पड़ा । यही रामचरितमानस रूपी नदी लोक में आज भी जन-जन के बीच अजरज गति से प्रवाहित होती जा रही है । तुलसी ने भौतिक सुख, यश, अर्थ और राज सम्मान के लोभ से कविता नहीं लिखी बल्कि अपने हृदय की सहज वेगवती और अनवरूध्द उमंग से मानस की रचना की है । तुलसी ने राम के आदर्श लोकनायक के रूप से अनुप्रणित होकर मानस रूपी मन्दिर का निर्माण किया है । अपने आराध्य को लोक का आराध्य बताया है ।

महती काव्य-प्रतिभा - तुलसी अपने काव्य में स्वाभाविक अनुभूति और उनकी सहज अभिव्यक्ति को विशेष महत्त्व देते हैं । इसीलिए उन्होंने लिखा भी है -

"कवि न होऊ नहिं वचन प्रबीनू । सकल भला सब विद्या हीनू ।।
आखर अरथ अलंकृत नाना । छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ।।
कवित्त विवेक एक नहिं मोरे । सत्य कहउँ लिखि कागज कोरे ।
भनिति मोरि सब गुन रहित, विश्व विदित गुन एक ।
सौ विचारि सुनहहिं सुमति, जिन्हके विमल विवेक ।।"

कवि तुलसी ने अपने आराध्य के प्रति अपनी आस्था, श्रध्दा और उत्सर्ग को अत्यन्त मार्मिक तथा सच्चाई के साथ व्यक्त किया है । इसके साथ ही तुलसी के काव्य की एक अन्य विशेषता है - संग्रह और त्याग की भावना । मानस के आरंभ में ही सन्तों के परिचय में कवि ने स्वयं ही इस पहचान का उल्लेख किया है -

"तेहि ते कछु गुण दोष बखाने । संग्रह, त्याग न बिनु पहचाने ।।"

मानस की कथा में उनकी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । नाना पुराण, निगमागम सभी कुछ उन्होंने पढ़ा और गुना, लेकिन 'सार सार को गहि लियो थोथा दियौ उड़ाय' की प्रवृत्ति के आधार पर कथानक के संगठन में मार्मिक स्थलों की योजना, संवाद, तत्व निरुपण तथा भाव-व्यंजना का बेजोड़ मिलाप किया ।

तुलसी की अद्‌भूत प्रतिभा के दर्शन सबसे अधिक उनकी समन्वयवादी दृष्टि में होते है। वे उच्चकोटि के समन्वयवादी कवि थे । उन्होंने जीवन और जगत के सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया और अपने समन्वयवादी विचारी द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त विषमता, विद्वैष, वैमनस्य कटुता आदि को दूर करके पारस्परिक स्नेह, सौहार्द, समता,

munotes.in

सहानुभूति आदि का प्रचार किया । इसलिए तुलसी एक उच्च कोटि के कवि, महान लोकनायक, सफल समाज सुधारक, भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ प्रचारक, समाज में उन्नत आदर्श के संस्थापक तथा समन्वयवादी के प्रतिष्ठापक संत कहलाते है ।

६.२.२ गुरूता, गम्भीरता और महानता :

महाकाव्य के लिए जिस गुरूत्व, गांभीर्य और महत्ता की आवश्यकता होती है, 'रामचरितमानस' में वह पूर्ण मात्रा में विद्यमान है । उसमें जीवन मूल्यों की जो विवेचना की गयी है और उसका जो प्रतिमान स्थिर किया है वह सार्वभौम और सार्वकालिक है । उन जीवन-मूल्यों के कारण ही 'मानस' भारतीय साहित्य का गौरवग्रन्थ बन गया है । तत्व, चिन्तन, दार्शनिक विवेचन, मानवता के उत्कर्ष की मंगलाशा, लोक-हित की उदात्त भावना और शिवेतर क्षय की कामना द्वारा तुलसी ने 'मानस' में गुरूता उत्पन्न कर दी है जो विश्व-साहित्य के कुछ इने गिने महाकाव्यों में ही दिखलाई पड़ती है । मानस में अभिव्यक्त कवि के बौध्दिक धरातल की उँचाई और चरित्रों के विराट व्यक्तित्व के कारण हृदय को आश्चर्य, श्रध्दा और सम्मान से भर देनेवाली उच्चता और विशालता के अंत को जो अच्छी तरह जान ले या हृदयंगम कर ले वही पूरा संत है। इसके बारे में एक लोकोक्ति प्रचलित है -

"मानस का अंत, जो समझे सो पूरा संत ।"

'मानस' में जिन जीवन-मूल्यों की स्थापना की गई है वे दो रूपों में अभिव्यक्त हए है - चिन्तन, विवेचन तथा उपदेश के रूप में और पात्रों के व्यावहारिक क्रिया-कलाप के रूप में । पहले प्रकार का जीवन-दर्शन.प्रमुखतः आधिकारिक कथा के भीतर दिखाई पड़ता है । दोनों का समान महत्त्व है और दोनों के योग से ही इस महाकाव्य में इतनी गुरूता आ सकी है ।

'मानस' का सप्तम सोपान ज्ञान और भक्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । इसके प्रथम सोपान में राम नाम और राम कथा का महत्त्व है । मानस में इन विषयों का जिस ढंग से प्रतिपादन किया गया है उसके कारण दार्शनिक और अनेक आध्यात्मिक बातें सर्वसुलभ हो गई है । मानस की गंभीरता वस्तुतः तुलसी और उनके हृदय की गम्भीरता है -

"सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना । ग्यान नयन निहयत मन माना ।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनन सोई वर वारि अगाधा ।।"

मानस की मूल भावना भक्ति है और उस भक्ति के आलम्बन तत्व है परम श्रध्दास्पद भगवान राम । जिनके मन में श्रध्दा और भक्ति है उनके लिए यह मानस की कथा सहज एव सुलभ है -

"जे श्रध्दा सबल रहित नहिं सन्तन कर साथ ।
तिन कहुं मानस अगम गति जिनहिं न प्रिय रघुनाथ ।।"

तुलसीने अपने मानस में नायक राम और उनके पक्ष के अन्य चरित्रों में प्रतिष्ठित जीवन-मूल्यों और आदर्शो को संजोया है तथा समस्त दोषों तथा दुर्गुणों को रावण एवं उसके पक्ष के चरित्रों में । इस प्रकार मानव जीवन के समस्त गुण और दोष एक साथ मानस में विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रकट हुए है । तुलसीदास ने रामराज्य के रूप में भावी भारत का जो मंगलमय स्वप्न देखा था, वह आज के भारतीय नेताओं और चिन्तकों का भी आदर्श स्वप्न है। तुलसी ने अपनी अन्तरात्मा की अनुभूतियों और विश्वासों के माध्यम से राम का जो विराट रूप प्रस्तुत किया वह महान है ।

६.२.३ महत्कार्य एवं समग्र जीवन का चित्रण :

महाकाव्य के उद्देश्यों के समान उसके कार्य भी महान होते हैं । रामचरितमानस का प्रमुख कार्य रामराज्य की स्थापना है । उस प्रमुख कार्य के पूर्व की समस्त घटना है - धनुष भंग, राम-जानकी विवाह, राम वनवास, सीता हरण, बालि वध, सेतु बंध, लंका दहन, राम-रावण युध्द आदि महान घटनाओं की परिणति बड़े स्वाभाविक ढंग से हुई है । राम-कथा की सबसे महत्वपूर्ण घटना राम-रावण युध्द है । इस कथा का जो महत्व और प्रभाव मानस में है, वह अन्य किसी काव्य में नही मिलता । इस घटना के उपरान्त रामराज्य या धर्मराज्य की स्थापना की गई है और यही पर वस्तुतः कथा समाप्त हो जाती है, जिसके कारण उसका महत्व बना रहता है । समग्र युग और समग्र जीवन से वैविध्यपूर्ण चित्रण की दृष्टि से रामचरितमानस एक उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य सिध्द होता है । तुलसी का लक्ष्य इस ग्रन्थ में राम के जीवन को प्रत्येक परिस्थिति में आचरण की उत्कृष्टता और आदर्श के रूप में चित्रित करने का रहा है । इसलिए मानस में महाकाव्योचित घटनाओं का विस्तार और जीवन व्यवहारों का वैविध्य दिखाई देता है। मानस में वीरता, प्रेम शोक, वात्सल्य, विस्मय, भक्ति, वैराग्य, क्षमा, दया, औदार्य लोकानुरक्ति, दीनता और धर्म प्रियता आदि भाषों की अभिव्यक्ति हुई है । तुलसी ने महाकाव्यों की प्रबन्ध रूढ़ियों का पालन करते हुए भी अपनी स्वतंत्र प्रकृति का परिचय दिया है और साथ ही वर्णनों का विधान भी उपस्थित किया है जिससे कथा का वातावरण पौराणिक, अलौकिक अथवा कृत्रिम न होकर वास्तविक हो गया है । रावण की आज्ञा के अनुसार विप्र, ऋषि, मुनि सर्वत्र सताए जाने लगे और सारे संसार में भगदड़ मच गई -

"देखत भीम रूप सब पापी । निसिचर निरूर देव परितापी ।
करहि उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहि करि माया ।।
जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहि वेद प्रतिकूला ।
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाऊँ पुर आगि लगावहिं ।।"

राक्षस घोर अत्याचार करने लगे थे । हिंसायें उनकी प्रिय थी, अतः उनके पापों की कौन गिनती कर सकता है । तुलसी उनके अत्याचारों का वर्णन करते हुए लखते हैं -

"बढ़े खल बहु और जुआरां । वे लंपट पर धन पर दारा ।
मानहु मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह संग करवावहिं सेवा ।।"

तुलसी ने रावण पर राम की विजय दिखाते हुए अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई है । अतः इस महान कारण से उद्भूत 'मानस' का जो कार्य है वह भी महत् है । वास्तव में 'मानस' में जीवन के विविध पक्षों, रुपों, और अवस्थाओं का जितना सर्वांगिन चित्रण हुआ है, उतना हिन्दी के किसी अन्य महाकाव्य में नहीं हुआ है ।

६.२.४ सुसंगठित और जीवंत कथानक :

रामचरितमानस में अधिकारिक कथा प्रथम सोपान के १७६ वें दोहे से प्रारम्भ होकर सप्तम सोपान के ५३ दोहे तक चलती है । प्रारंभ के १७५ छन्दों तथा अन्त अंत के ७७ छन्दों में मानस का गाम्भीर्य एव गुरुत्व समाया हुआ है । जीवन्त कथानक का अभिप्राय यही है कि कथा पूर्णतः सुसंसगठित हो । मानस मे राम वाल्मकि संवाद, ऋषियों, मुनियों से भेंट, राम की स्तुतियाँ आदि ऐसे स्थल है जहाँ कथा प्रकट हुई सी जान पड़ती है । यद्यपि राम कथा के महात्म्य की दृष्टि से ये स्थल विशेष महत्वपूर्ण और गौरव से मंड़ित है किन्तु कथानक की गति इन स्थलों पर रूध्द है । राम जन्म से बनवास कथा का आदि भाग, सीता हरण तक मध्य भाग

तथा रामराज्य की स्थापना कथा का अन्तिम भाग है । इसमें अवान्तर स्थल भी भलि भाँति अनुस्यूत हैं ।

अधिकारिक कथा में अवान्तर कथाओं का अभाव है । अहिल्या उध्दार, ताड़का वध, शबरी का आतिथ्य, हनुमान का विवर प्रवेश, शूर्पनखा तथा खर दूषण के प्रसंग तथा हनुमान के समस्त साहसिक कार्य नायक राम के उत्कर्ष में सहायक हैं । घटनाओं की अधिकता, उनका श्रृन्खलित विकासक्रम और पात्रों की कर्म शीलता के कारण मानस में नाटकीय रंग की सक्रियता भी पूर्ण मात्रा में मिलती है । आधिकारिक कथा में पाँच कार्यावस्थाएँ मिलती हैं -

१) प्रारम्भ कार्यावस्था - रावण के अत्याचार के वर्णन से राम-लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ जाने तक की घटनाएँ इसके अंतर्गत आती है ।

२) प्रयत्न कार्यावस्था - राम वनवास से लेकर शूर्पनखा प्रसंग की समस्त घटनाएँ इसके अन्तर्गत आती है ।

३) प्राप्त्याशा कार्यावस्था - खर दूषण और सीता हरण से लेकर हनुमान के लंका लौटने तक की घटनाएँ इसके अन्तर्गत आती है ।

४) नियताप्ति कार्यावस्था - राम की युध्द यात्रा, सेतु बंधन, कुम्भकर्ण वध की घटनाएँ नियताप्ति के अंतर्गत आती है ।

५) फलागम कार्यावस्था - रावण वध तथा रामराज्य की स्थापना तक की घटनाएँ फलागम के अंतर्गत आती है ।

रामचरितमनस में इन पाँच कार्यावस्थाओं के अतिरिक्त पाँच सन्धियों की भी व्यवस्था की गई है -

१. मुख संधि - यह संधि उस स्थान से प्रारम्भ होती है जहाँ कवि राम के जन्म होने के कारणों पर प्रकाश ड़ालता है ।

२. प्रतिमुख संधि - यह संधि राम बनवास की घटना के प्रारम्भ में है ।

३. गर्भ संधि - राम के वन में वास करने से प्रारम्भ होती है ।

४. विमर्श संधि - हनुमान का स्वयं परिचय देने से प्रारम्भ होती है ।

५. निर्वहण संधि - रावण वध के उपरान्त रामराज्य वर्णन की कथा में निर्वहण संधि है ।

मानस में कुछ प्रकरी कथाएँ भी हैं । जैसे - अहिल्या उध्दार, ताडका वध, राम-परशुराम संवाद, शबरी मिलन, रावण और जटायु मिलन, हनुमान का विवरप्रवेश, हनुमान कालनेमि प्रसंग, हनुमान-भरत प्रसंग, राम तथा विविध मुनियों के समस्त संवाद आदि । इसके अतिरिक्त मानस में कुछ अवान्तर कथाएँ भी है - शिव-चरित्र, जय-विजय कथा, कश्यप-अदिति की कथा, जलन्धर वृक्ष की कथा, मनु शत रूपा की कथा, प्रतापभानु की कथा, रावण तथा भुशुण्डि का चरित आदि । इसमें पहली अवान्तर कथा को छोड़कर शेष सब रामावतार को स्पष्ट करने से लिए लिखी गई है । अतः इन्हें प्रासंगिक कथा के रूप में माना जा सकता है । मानस की कथा में कुछ, कथानक रूढ़ियों का भी प्रयोग हुआ है - आकाशवाणी और मुनियों का शाप, रूप परिवर्तन, वन में मार्ग भूलना, मंदिर या वाटिका में (सुन्दरी से भेंट, राक्षस, गंधर्व आदि अमानवीय व्यक्तियों की राम की सहायता, अतिप्राकृत तथा अलौकिक शक्तियाँ और उनके कार्य, कबन्ध युध्द, ऋतु वर्णन, सीता के सतीत्व के परिक्षण का वर्णन आदि ।

६.२.५ महान नायक तथा अन्य महत्वपूर्ण चरित्र :

काव्य की दृष्टि से रामचरितमानस की सबसे बड़ी विशेषता उसका चरित्रगत सौन्दर्य और आदर्श है । साधारण जनता मानस का काव्य-सौन्दर्य चाहे न समझे किन्तु राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, कौशल्य, कैकयी, रावण, हनुमान, विभिषण, सुग्रीव आदि के चरित्रों से परिचित है। भारतीय काव्यशास्त्र में धीरोदात्त, धीरोदत्त, धीर ललित और धीर प्रशान्त चार साँचे श्रेष्ठ चरित्रों के प्रतिपादन के लिए बनाए गए हैं। यद्यपि इन साँचो में सभी चरित्रों को ढालने का प्रयत्न किया गया है, तथापि इसके बाहर भी बहुत कुछ बचा रहता है। इस प्रकार मानस का प्रत्येक पात्र अपने प्रकार का अकेला है।

सीता मूल प्रकृति या लक्ष्मी का अवतार है। वे मानस की नायिका है और कुमारी, कुलवधू पत्नी, गृहिणी, राजमहिषी, वियोगिनी, संयोगिनी सभी रूपों में मर्यादा का पूर्ण पालन करती हैं। राम-रावण का युध्द सत्-असत् प्रवृत्तियों का संघर्ष इसी मूल प्रकृति के रूप में हुआ है। इसी से इसका प्रतिकात्मक अर्थ लिया जा सकता है। कौशल्य का आदर्श, माता का आदर्श है और कैकयी का दिमाता का। मंदोदरी एक ओर पतिव्रता है तो दूसरी और सत्य, धर्म और निति का पालन करनेवाली आदर्श नारी है।

'मानस' के नायक क्षत्रिय कुल-भूषण भगवान राम है, जो तुलसी की उदारता, अन्तःकरण की विशालता एवं भारतीय चरित्रिक आदर्श का साकार प्रतिमा हैं । तुलसी ने राम के रूप में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की आदर्शमयी ऐसी जीवन्त प्रतिमा प्रतिष्ठित की है, जो विश्व भर में अलौकिक, असाधारण अनुपम एवं अद्‌भुत है । जो धर्म एवं नैतिकता की दृष्टि से सर्वोपरि हैं तथा जिसमें त्याग, विराग एवं साधुप्रकृति के साथ-साथ लोकहित एवं मानवता का साकार रूप विद्यमान है । तुलसी ने राम के चरित्र में अपनी उर्वर कल्पना एवं उत्कृष्ट प्रतिमा द्वारा मानव में देवत्व की, नर में नारायण की, व्यक्ति में ब्रह्म की जो स्थापना की है, वह अद्‌भुत है ।

राम काव्य का आदर्श पक्ष अत्यन्त उच्च है । राम आदर्श पुत्र है, वे आदर्श राजा भी हैं। सीता आदर्श पत्नी है, कौशल्या आदर्श माता है, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई हैं, हनुमान आदर्श सेवक हैं और सुग्रीव आदर्श सखा हैं । इस काव्य में जीवन का मूल्यांकन आदर्श चरित्रों की कसौटी पर किया गया है । राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, स्वामी-सेवक और पड़ोसी के सुन्दर और स्वस्थ सम्बन्धों के पर आधारित आदर्श रामराज्य की स्थापना इन सत् और आदर्श चरित्रों द्वारा सहज सम्भव है ।

६.२.६ गरिमामयी उदात्त शैली :

'मानस' के चरित्र इतने जीते-जागते और आकर्षक है कि उनके भीतर से तुलसी का जीवन और आकर्षक व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से उद्‌भासित होता है, यही 'मानस' की शैली की सबसे बड़ी विशेषता है । कवि की उस दैन्य भावना और आडम्बरहीन व्यक्तित्व की सरलता की ही अभिव्यक्ति 'मानस' की शैलीगत सरलता, सबोधता, रमणीयता और विशदता के रूप में हुई है । तुलसी राम का चरित सरल, सुबोध और सर्वसुलभ शैली में लिखने के पक्ष में थे । इसलिए अतिशय विनम्रता से उन्होंने लिखा है -

"कवि न होउँ नहि चतुर प्रवीनू । सकल कला सब विद्या हीनू ।।
आखर अरथ अलंकृति नाना । छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ।।
भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुण विविध प्रकारा ।।
कवित्त विवेक एक नहिं मोरे । सत्य कहो लिखि कागज कोरे ।।"

तुलसी ने तत्कालीन काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं का विरोध करने की दृष्टि से यह पक्तियाँ लिखी है और यह सिध्द किया है कि काव्य में विषय वस्तु का ही अधिक महत्व है, उसके लिए काव्यशास्त्र के ज्ञान का प्रदर्शन करना अनुचित है, क्योंकि ऐसा सरल, सबोध और प्रेरणादायक काव्य ही श्रेष्ठ काव्य है जो 'सूरसरि' के समीन सबका हित साधन करे ।

'मानस' का काव्य-सौन्दर्य कथानक-योजना, वस्तु व्यापार वर्णन, भाव - व्यन्जना, सरस संवाद आदि के अन्तर्गत तो है ही, किन्तु सबसे अधिक कौशल उन मार्मिक स्थलों के चुनाव में दिखाई देता है, जिनको काव्य में स्थान देकर कवि ने सरलता एवं रमणीयता की वृध्दि की है । आचार्य शुक्ल जी ने उन मार्मिक स्थलों में से जनक की वाटिका में राम-सीता का परस्पर दर्शन, राम-वन-गमन, दशरथ मरण, भरत की आत्मग्लानि, वन के मार्ग में स्त्री-पुरुषों की सहानुभूति, युध्द, लक्ष्मण को शक्ति लगना आदि अधि हृदय को स्पर्श करने वाला बताया है।

६.२.७ प्रभावान्विति और रस व्यन्जना :

'रामचरितमानस' में विविध भावों से युक्त नव रसों का सहज उद्रेक बड़ी सजीवता एवं सफलता के साथ हुआ है । 'मानस' का प्रत्येक सोपान विविध रसों से परिपूर्ण है, जिसमें तुलसी की कारयिजी प्रतिभा के साथ-साथ उर्वर कल्पना एवं उत्कृष्ट भावुकता के दर्शन होते हैं । राम और सीता के पुष्पवाटिका मिलन सम्बन्धी वर्णन में यदि संयोग श्रुन्गार के दर्शन होते हैं, तो अशोक वाटिका में निवास करती हुई विरहिणी सीता के वियोग-वर्णन में विप्रलम्भ श्रृन्गार का वर्णन मिलता है । ऐसे ही दशरथ-मरण पर रानियों के शोक विह्वल विलाप में करूण रस की व्यंजना हुई है, तो धनुष्य-यज्ञ के अवसर पर लक्ष्मण की दर्पोक्तियों में वीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । नारद-मोह के वर्णन में हास्य रस की व्यन्जना मिलती है, तो परशुराम की गर्वोक्तियों में रौद्र रस का स्वरूप विद्यमान है । इसी भाँति शिवजी की बरात के चित्रण में भयानक रस की मधुर व्यन्जना हुई है, तो खर-दूषण, मेघनाद और राम-रावण के युध्द के अवसर पर जम्बुक, भूत-प्रेत, पिशाच आदि द्वारा हड्डी, मांस, चर्बी आदि के भक्षण का वर्णन करते हुए बीभत्स रस की योजना भी सफलतापूर्वक हुई है । ऐसे ही राम के विराट रूपों के वर्णन में यदि अद्भूत रस की व्यन्जना हुई है तो भक्ति-निरूपण, राम-स्त्रोत, शिव-स्त्रोत आदि में शान्त रस की सुन्दर योजना हुई है ।

यद्यपि 'मानस' में विविध भाषों एव सभी रसों का सुन्दर निरूपण हुआ है, तथापि इसका अंगी इस कौन-सा है ? इस पर विद्वानों में मतभेद है । कुछ विद्वान इसे वीर रस प्रधान मानते है, कुछ शांत रस प्रधान मानते हैं और कुछ भक्ति-रस प्रधान स्वीकार करते हैं । किन्तु डॉ. शम्भुनाथ सिंह का मत है कि, "मानस में जो प्रधान रस है, वह अलौकिक श्रृगांर रस ही है और इसी को गौड़ीय वैष्णव अलंकारिकों ने भक्ति रस कहा है।" अतः अन्य सभी रसों की अपेक्षा 'मानस' में भक्ति रस का ही प्राधान्य है, यही 'मानस' का अंगी रस है तथा अन्य सभी रस इसके अंग रूप में आये है। निःस्सन्देह 'मानस' में भाव एवं रस का निरूपण अत्यन्त गम्भीर एवं मार्मिक रूप में हुआ है।

६.२.८ जीवन शक्ति और प्राणवत्ता :

'रामचरितमानस' विश्व का एकमात्र ऐसा महाकाव्य है, जिसका करोड़ो व्यक्तियों के बीच एक विशाल भूखण्ड़ में धर्मग्रन्थ के रूप में आदर है। जिसका धर्मग्रन्थ और काव्य ग्रन्थ दोनों ही रूपों में लक्ष-लक्ष जनता नित्य पाठ और समवेत गान करती है, जिसका नाटक के रूप में अभिनय होता है और जिसके छन्दों को पवित्र समझकर उनसे अपने भविष्यसूचक प्रश्नों का

उत्तर निकाला जाता है। अकेले यह ग्रन्थ उत्तरी भारत के एक बहुत बड़े समुदाय की जीवनधारा को मोड़ने में समर्थ हुआ है। इस सम्बन्ध में डॉ. ग्रियर्सन का यह कथन उल्लेखनीय है - "साहित्य कि दृष्टि से रामायण के गुणों को एक और रखकर यह बात अवश्य उल्लेखनीय है कि यह ग्रन्थ यहाँ की सर्व जातियों द्वारा अंगीकृत है। पंजाब से भागलपुर तक और हिमालय से नर्मदा तक इसका प्रभाव है। यह राजमहल से लेकर झोपड़ी तक प्रत्येक मनुष्य के हाथों में देखा जाता है और हिन्दू जाति के प्रत्येक वर्ण द्वारा, चाहे वह उच्च हो या नीच, धनी हो या निर्धन, युवा हो या वृध्द, एक रूप में पड़ा सुना जाता है अथवा आदृत होता है । यह हिन्दू जनता के जीवन, भाषा अथवा चरित में प्रायः तीन सौ वर्ष से ओतप्रोत है और केवल अपने कवितागत सौन्दर्य के लिए ही आदर तथा प्रेम नहीं लाभ करता है वरन् यह उनसे पवित्र धर्म पुस्तक की भाँति सम्मानित है । जिस धर्म का उसने प्रचार किया है, वह सादा और उच्च है एवं ईश्वर के नाम के पूर्व विश्वास पर निर्भर है । ..... इग्लैंड, में बाइबिल का जितना प्रचार है उससे कहीं अधिक प्रचार गंगा की घाटी में 'रामचरितमानस' का है ।"

'रामचरितमानस' इस अनवरूध्द जीवनी-शक्ति का मूल कारण कवि का वह महान व्यक्तित्व है जो 'मानस' की आत्मा में व्याप्त है । उसे कवि का जीवनादर्श या जीवन-दर्शन कह सकते है । इसी जीवन दर्शन के कारण 'मानस' में वह सशक्त प्राणवत्ता आ सकी है, जिससे सारे विश्व में उसका महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है । 'मानस' का जीवन-दर्शन उसका मानवतावाद है । इस दर्शन ने निर्बल, निरीह, अत्याचारों से पीड़ित निराश जनता में जीवन का संचार किया है, सर्वशक्तिमान भगवान को जन-जन तक पहुँचा कर सबको आश्वत किया है । यही नहीं, मानव को ही भगवान रूप में परिवर्तित कर, भक्त को भगवान से भी बड़ा बनाकर और जीवन तथा जगत की संसारता और भक्ति के क्षेत्र में उनका महत्त्व प्रतिपादित करके तुलसी ने मानव को बहुत उँचा उठा दिया है ।

६.३ सारांश

गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' अद्‌भूत काव्य, सौष्ठव, सरल रचना शैली एवं सर्वांगपूर्ण काव्य-कुशलता से परिपूर्ण एक महान एवं सफल महाकाव्य है। यह काव्य तुलसी की काव्य मर्मज्ञता, कलात्मकता, सरसता, भावुकता, गंभीरता एवं रचना निपुणता का द्योतक है। इसमें तुलसी कवि और उपदेशक दोनों रुपों में विद्यमान हैं। 'मानस' में कवि ने मर्यादित श्रृन्गार के साथ-साथ असीम शौर्य, अतुलित पराक्रम, अद्वितीय शील, उत्कृष्ट रूप सौन्दर्य एवं उच्च कोटि के मानवता प्रेम का निरूपण किया है। 'मानस' का निर्बल, निरीह एवं निराश्रित जनता से सम्बन्ध हैं, इसमें जगत् से अधीर एवं विक्षुब्ध मानव को भक्तवत्सल एवं सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् के समीप पहुँचाकर अश्वस्त करने की अपूर्व शक्ति है और इसमें लोक जीवन की गहराई तक पहुँचने की अद्‌भुत क्षमता है। निसन्देह इन सभी दृष्टियों से 'रामचरितमानस' एक अमर महाकाव्य है।

६.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. रामचरितमानस के महाकाव्यत्व पर प्रकाश ड़ालिए ।

२. रामचरितमानस के काव्य रूप की विवेचना कीजिए ।

३. 'रामचरितमानस सफल तथा अमर महाकाव्य है' इस मत की समीक्षा कीजिए ।

६.५ लघुत्तरी प्रश्न

१. 'मानस' का काव्य रूप क्या है?
२. अरस्तु ने महाकाव्य के कितने लक्षण बतायें हैं?
३. रामचरितमानस का फल क्या है?
४. 'मानस' का सप्तम सोपान किस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है?
५. रामचरितमानस का प्रमुख कार्य क्या है?
६. 'मानस' का अंगी रस कौन-सा है?
७. 'मानस' के नारद मोह वर्णन में किस रस की व्यंजना हुई है?
८. 'मानस' में शिवजी की बारात के चित्रण में किस रस की अभिव्यक्ति हुई है?
९. धनुष्य यज्ञ के अवसर पर लक्ष्मण की दर्पोक्तियों में किस रस की व्यंजना हुई है?
१०.'इंग्लैंड़ में बाइबिल का जितना प्रचार है उससे कहीं अधिक प्रचार गंगा की घाटी में 'रामचरितमानस' का है' किसका कथन है ?

६.६ संदर्भ ग्रंथ

१. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ.उदयभानु सिंह
२. रामचरितमानस - सं. सुधाकर पाण्डेय
३. तुलसी - सं. उदयभानु सिंह
४. तुलसीदास - नंदकिशोर नवल
५. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि - डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
६. तुसली की साहित्य साधना - डॉ. लल्लन राय
७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

❖❖❖❖

munotes.in

७

अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु

इकाई की रूपरेखा :

७.० इकाई का उद्देश्य
७.१ प्रस्तावना
७.२ अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु
७.३ अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु की विशेषताएँ
७.४ सारांश
७.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
७.६ लघुत्तरीय प्रश्न
७.७ सन्दर्भ ग्रन्थ

७.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषयवस्तु के अध्ययन से अध्येता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश निहित है -

- अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु की जानकारी देना।
- अयोध्याकाण्ड की विशेषताओं से परिचय कराना।

७.१ प्रस्तावना

तुलसीदास का रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का ही नहीं विश्व साहित्य का गौरव ग्रन्थ है। इस महाकाव्य की कथावस्तु सात काण्डों में विभाजित है। इन सात काण्डों में अयोध्याकाण्ड का विशेष महत्त्व है। यह काण्ड अपने में एक सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य है। रामचरितमानस के अंश के रूप में होते हुए भी इसे यदि उससे पृथक रख दिया जाए तो इसके स्वरूप, रचनादर्श, प्रबन्ध, विधान आदि पर किसी प्रकार का आघात नहीं पड़ता। विद्‌वानों का अनुमान है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने मानस के रचनाक्रम में सर्वप्रथम इसी काण्ड की रचना की थी। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि - "यह काण्ड वस्तुतः जितना सुगठित है, उतना कोई अन्य काण्ड ही नहीं है और ग्रन्थ का कोई अन्य अंश भी नहीं है।" तुलसी ने कुछ अपवादों को छोड़कर अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु को वाल्मिकी रामायण पर आधारित किया है और उनकी रचना का मूल दृष्टिकोण धार्मिक न होकर साहित्यिक रहा है।

munotes.in

७.२ अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु

अयोध्याकाण्ड की सम्पूर्ण कथा को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - (अ) राम कथा और (ब) भरत कथा। अयोध्याकाण्ड के पुर्वार्द्ध का सम्बन्ध राम के चरित्र से है और उत्तरार्ध का सम्बन्ध भरत के चरित्र से। गोस्वामी तुलसीदास मंगला-चरण के बाद सर्वप्रथम अयोध्या की समृद्धि के वर्णन के साथ कथा का आरम्भ करते हैं। आनन्दमग्न नगर के परिजन, माताएँ, बन्धु-बांधव, पार्षद, ब्राह्मण और फिर दशरथ के अभिषेक की परिकल्पना से आनन्दित होना, साथ ही सम्पूर्ण अयोध्या नगरी की साज-सज्जा, अलंकरण और अयोध्यावासियों का हर्षातिरेक आनन्द की सृष्टि करता है। राजा दशरथ पुत्र राम को युवराज-पद देनेवाले हैं। संयोग ऐसा है कि मुहरत अभी बन रहा है और भरत एवं शत्रुघ्न भरत के ननिहाल में हैं। लिहाजा यह आयोजन उनके अभाव में ही सम्पन्न होने जा रहा है। मंथरा कैकयी की निजी दासी है, जो उसके साथ उसके मायके से आयी है। उसे उक्त आयोजन के पीछे एक भारी षड़यंत्र दिखाई देता है, जो मौका देखकर भरत की अनुपस्थिति में कार्यान्वित होने जा रहा है। अतः वह कैकयी को उनके खिलाफ भड़का देती है। कैकयी को राम अतिशय प्रिय है और वह उनके राजतिलक के पीछे कोई दुरभिसंधि नहीं देख रही थी, लेकिन वह मंथरा की कुटनीति एवं तर्कजाल में फँस जाती है।

संध्या समय दशरथ जब आनन्दपूर्वक कैकयी के कक्ष में जाते हैं तो पाते हैं कि कैकयी कोप-गृह में है। राजा ने जब कोप का कारण पूछा तो कैकयी ने दो वरदान माँगे। दशरथ ने जब कैकयी के इच्छित दोनों वरदानों को सुना तो उनकी स्थिति 'गयउ सहमिं नहिं' कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा। बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू।। हो गयी। उन्हांने कैकयी से अनुरोध किया कि वह भरत के राज्याभिषेक का वरदान उनसे सहर्ष ले ले, लेकिन राम को वन भेजने की जिद छोड़ दे। उन्होंने कैकयी से कहा कि -

'जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना।।
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं।।'

दशरथ की मनोदशा ऐसी है कि -

"हदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई।।
उदहु करहु जनि रवि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर।।"

लेकिन सुर्योदय रुक नहीं सकता था। जब राम उन्हें खोजते हुए उनके पास पहुँचे, तो -

"जाइ दीख रघुबंमनि नरपति निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंघनिहि मनुहँ वृद्ध गजराज।।"

कैकयी ने राम को अपने वरदानों के सम्बन्ध में बतलाया कि पिता के आदेश से भरत राजा होंगे और राम चौदह वर्षों के लिए वन जाएँगे। राम को यह स्वर्ण अवसर की तरह प्रतीत हुआ। उन्हों बहुत ही सरल और सहज शब्दों में अपनी प्रसन्नता प्रकट की। जब दशरथ ने देखा कि राम वन जाने के लिए तैयार हैं, तब वे शिव से यही प्रार्थना करने लगे कि -

"तुम्ह प्रेरक सब के ह्रदयँ सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु।।"

या फिर -

"अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ।।
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही।।"

राम-वन-गमन अयोध्याकाण्ड का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। सीता ने भी जब राम के साथ वन जाने के लिए अपनी इच्छा प्रकट की, तो पहले उन्हें कौसल्या ने समझाया, फिर राम ने भी, लेकिन वे किसी के आगे नहीं झुकीं। उन्होंने पति राम से कहा कि -

"को प्रभु सँग मोहि चितबनिहारा। सिंघ बधुहि जिमि ससक सिआरा।।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू।।"

जिसके आगे राम को झुकना पड़ा। राम ने जब जान लिया कि उनके बिना उनका जीवन अकल्पनीय है, तो वे उन्हें अपने साथ लेने के लिए तैयार हो गये। राम तो लक्ष्मण के लिए प्राणों से भी प्रिय थे, वे भी उनके साथ वनवास के लिए निकलते हैं।

अयोध्याकाण्ड का केवट-प्रसंग भी विशेष उल्लेखनीय है। केवट राम के 'चरण कमल रज' की महिमा को जानता है इसीलिए वह बिना चरण धोये राम को नाव में बैठने नहीं देता है। केवट का कहना है कि -

"छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काढ कठिनाई।
तरनिउ मुनि घरिनी होई जाई। बाट परइ मोरि नावु उड़ाई।।"

केवट के 'प्रेम लपेटे अटपटे बैन' और राम की हंसी इस प्रसंग को विशिष्ट बना देती है।

वन के मार्ग में सीता की मुलाकात ग्राम-बधुओं से होती हैं। वे उनसे जानना चाहती है कि राम उनके कौन है? उस पर दिया हुआ सीता का उत्तर अत्यधिक प्रसिद्ध है, जिसमें भारतीय नारी का शील बोल रहा है -

"कोटि मनोज लजाबनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महु मुसुकानी।"

फिर -

"सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे।।
बहुरि बदनु विधु अँचल ढ़ाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।"

सीता और लक्ष्मण राम का अनुगमन करते हैं, तो इस तरह कि उनके चरण चिह्नों पर उनके पाँव न पडें। सीता ड़रते हुए राम के चरण-चिह्नों के बीच में अपने पाँव रखती है और लक्ष्मण उन्हें दाहिने रखकर रास्ता चलते हैं। तुलसी दास को इस सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी वर्णन के लिए दाद देनी चाहिए -

"प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता।
सीय राम पर अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ।।"

सुमंत्र जब राम, लक्ष्मण और सीता को छोड़कर वापस होने लगे, तो उनके रथ के घोड़े राम की ओर देखकर व्याकुल हो उठे। सुमंत्र भारी मन से अयोध्या पहुँच गए, लेकिन दिन में उन्हें नगर प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ, अतः वे एक वृक्ष के नीचे बैठकर साँझ होने का इन्तजार करने लगे। सुमंत्र जब दशरथ को देखने गये, तो उन्होंने राजा दशरथ को चिन्ताजनक स्थिति में देखा -

"जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा।"

उन्होंने अत्यन्त व्याकुल होकर सुमंत्र से कहा कि -

"सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहिं पहुँचाउ।
नाहिंत चाहत चलन अब प्रान कहऊँ सतिभाउ।।"

दशरथ ने सुमंत्र से कहा था कि वे राम, लक्ष्मण और सीता को वन घुमाकर ले आएँगे, लेकिन वे खाली हाथ लौट आये और उन्हें राम का सन्देश सुनाया कि वे उनके आदेश का पालन करके उनके चरणों में सकुशल लौट आएँगे। पुत्र का सन्देश सुनकर पिता की दशा देखिए -

"सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारून दाहू।
तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा।।"

पुत्र का वियोग वे सह नहीं पाये और फिर -

"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।।"

दशरथ की मृत्यु के बाद दूत भेजकर भरत और शत्रुघ्न को अयोध्या बुलवाया गया। उनसे कुछ कहने को दूत को मना कर दिया गया था। दोनों भाइयों ने जब नगर में प्रवेश किया तो वहाँ के शोकपूर्ण, करूणात्मक वातावरण को देखकर भरत विचलित हो गये। वे सीधा माता कैकयी पास गए और उनसे पूछने लगे कि -

"सकल कुशल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई।
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता।"

पिता की मृत्यु का समाचार भरत के ह्रदय पर तीव्र आघात करता है, वे व्याकुल हो जाते हैं - "तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि तल व्याकुल भारी।"

भरत के लिए 'राम-बनवास' अत्यन्त दारूण और कष्टदायी हो उठता है -

"भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौनु।।"

भरत को जब पता चलता है कि उनकी पिता की मृत्यु और राम-वनवास का कारण कोई और नहीं स्वयं उनकी माता है तो वे उनके प्रति अपना कोप और मर्त्सना को इस प्रकार प्रकट करते हैं -

"जब तै कुमति कुमत जियँ ठयऊ। खण्ड खण्ड होइ ह्रदय न गयऊ।
वर मागत मन भई नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।"

कैकयी ने भरत की सबसे प्रिय वस्तु और उनके मर्म-स्थल पर असह्य आघात किया था, जिससे वे अतिशय विचलित थे। उसके प्रति उनका भर्त्सना का भाव तीखा से तीखा हो जाता है, वे माता कैकयी से कहते हैं -

"मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई।
कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भई काहे न बाँझा।।
कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोहि। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही।
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी।
पितु सुरपुर बन रघुवर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू।
धिक मोहि भयहुँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी।"

कैकयी के आचरण से भरत को उसके प्रति जो विरक्ति हुई, वह उसके जीवन पर्यंत बनी रही। आत्मग्लानि, भर्त्सना, निर्दोषिता, आत्मनिन्दा आदि प्रसंगों की व्यंजना करके तुलसीदास भरत शोक के विविध रूपों तथा भंगिमाओं की रचना करते है। अन्ततया कवि सम्पूर्ण आत्मग्लानि एवं आक्रोश का एक ही उपाय निर्दिष्ट करता है, चित्रकूट जाकर राम का प्रत्यावर्तन करना -

"अवर उपाउ एक नहिं सूझा। को जिअ कै रघुबर बिनु बूझा।
एकहि आँक इहइ मन माँहिं। प्रातकाल चलि हौं प्रभु पाहीं।।"

महाराज दशरथ का श्राद्ध - कर्म सम्पन्न करके भरत वशिष्ठ सहित अपने सभी परिजनों और ढ़ेर-सारे पुरजनों को लेकर राम के राज्याभिषेक की सम्पूर्ण सामग्री के साथ चित्रकूट के लिए निकलते हैं। पैदल चलने के कारण उनके पाँवों में छाले आ जाते हैं। तीसरे प्रहर में वे प्रयाग पहुँचते हैं -

"भरत तीसरे प्रहर तब कीन्ह प्रवेश प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग।।"

भरत के साथ सुरक्षा के लिए अयोध्या की सेना भी है, जिसे देखकर निषाद और लक्ष्मण दोनों को भ्रम होता है कि वे राम को मारकर निष्कंटक राज करना चाहते हैं। लेकिन भरत से मिलने पर दोनों का भ्रम दूर हो जाता है। यहाँ पर तुलसी ने राम की विह्वलता का जो वर्णन किया है, वह अत्यंत प्रभावशाली है। राम बैठे हुए जैसे किसी ध्यान में खोए थे, सो लक्ष्मण ने उनसे कहा -

"कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा।"

सुनते ही राम बड़ी अधीरता से भरत से मिलने के लिए खड़े हुए -

"उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।"

कुछ समय बाद जनक भी चित्रकूट पहुँचे। उन्होंने सीता के आचरण पर अत्यधिक हर्ष प्रकट किया और उन्हें यह मार्मिक वचन कहा कि 'पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।' राम ने अपना राज्याभिषेक कराना अस्वीकार कर दिया और वे अयोध्या लौटने को भी तैयार न हुए। अंत में

munotes.in

जनक ने जाकर भरत से पूछा कि तुम्हारी जो आज्ञा हो, मैं राम को जाकर बतला दूँ? भरत ने सब कुछ उन्हीं पर छोड़ दिया। उन्होंने जनक से बस इतना ही कहा कि -

"सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे।
ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी।"

चित्रकूट सभा का फल यह हुआ कि भरत राम की इच्छा के विरुद्ध न जा सके और उनकी चरण-पादूका लेकर अयोध्या लौट आए। उस चरण-पादूका को राजासिंहासन पर स्थापित कर के नंदिग्राम में तपस्वी जीवन बिताते हुए राज्य का शासन चलाने लगे। गोस्वामी तुलसीदास ने भरत की प्रशंसा में जो कुछ कहा है वह देखने लायक है -

"भूषन बसन भोग सुख भूरी। तन मन बचन तजे तिन तूरी।
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दशरथ धनु सुनि धनदु लजाई।
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि जैसे बालकाण्ड के नायक लक्ष्मण हैं, वैसे ही अयोध्याकाण्ड के नायक भरत है।

७.३ अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु की विशेषताएँ

अयोध्याकाण्ड रामचरितमानस का विशिष्ट और प्रभावशाली काण्ड है। श्री. एफ. ई. केई ने अयोध्याकाण्ड के सम्बन्ध में लिखा है - "रामकथा सात काण्डों में विभक्त है। इनमें से द्वितीय काण्ड सर्वोत्कृष्ठ माना जाता है। पात्रों का चित्रण पूर्वापार अनुरूपता के साथ हुआ है और बहुत से दृश्य गंभीर भावुकता से पूर्ण हैं। तुलसी की प्रतिभा ने दशरथ शोक, राम की पितृ-भक्ति, विनम्रता तथा उदारता, सीता की पतिभक्ति, लक्ष्मण का साहस तथा उत्साह और भरत की निःस्वार्थता का जैसा वर्णन किया है वह अनिवार्य रूप से पाठक के ह्रदय में संवेदना जागृत करता है।"

अयोध्याकाण्ड की कथावस्तू आरम्भ से अंत तक बहुत सुगठित एवं क्षिप्र गतिवाली है, जिससे उसमें रोचकता उत्पन्न हो गई है। तुलसी की यह पद्धति रही है कि वे कलात्मक संयम से काम लेते हुए अवान्तर कथाओं को या तो छोड़ देते हैं या उनका अनावश्यक विस्तार न कर उल्लेख मात्र कर देते हैं जिसमें उनकी कथावस्तू में शिथिलता कहीं नहीं आने पाती। उनका यह गुण इस काण्ड में विशेष रूप से स्फुटित हुआ है। उदा. - 'वाल्मीकिय रामायण' में कैकयी माता की कथा, राजकुमार असगंज का उल्लेख एवं त्रिजर ब्राह्मण का प्रसंग है। मानसकार तुलसी ने इनको मूलकथा के विकास में सहायक न समझ कर छोड़ दिया है। वाल्मीकि-रामायण में मरणोन्मुख दशरथ ने श्रवणकुमार का प्रसंग बहुत विस्तार से सुनाया है जो उस अवस्था में कुच अस्वाभाविक लगता है। तुलसी ने केवल एक अर्धली में उसका उल्लेख करना पर्याप्त समझा है - "तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्याहि सब कथा सुनाई।।" तपास भेंट कवि तुलसी की सर्वथा मौलिक उद्भावना है जिसका भक्तित्त्व की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इष्टदेव को अपने निवास स्थान के पास से जाते देख भावुक भक्त (तुलसी) प्रच्छन्न रूप से उनके सम्मुख उपस्थित हो उनकी चरणवंदना करने का लोभ संवरण न कर सके हैं। इसीतरह 'चित्रकूट प्रसंग' भी 'मानस' के सर्वाधिक मार्मिक प्रसंगों या स्थलों में से एक है।

अयोध्याकाण्ड की समाप्ति भी बहुत उपयुक्त स्थल पर की गई है। एक ओर बड़ा भाई वन में तप करता दीख पड़ता है तो दूसरी ओर छोटा भाई नगर में। काण्ड का आरम्भ यदि अग्रज के वन को धर बनाने से होता है तो उसका समापन अनुज द्वारा घर को ही वन बना दिये जाने से। स्वभावतः ही समग्र काण्ड की कथावस्तु में एक अतीव रमणीय कलात्मक अन्विति उत्पन्न हो गयी है। इस काण्ड की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है -

१. अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु आरम्भ से अंत तक सुघटित और गतिशील है। परिणामस्वरूप उसमें रोचकता, कलात्मकता और मार्मिकता का विधान हुआ है।

२. अयोध्याकाण्ड का समापन उपयुक्त स्थल पर किया गया है। इसमें प्रसंगों को सही ढंग से प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास धर्म, भक्ति और आदर्श एवं नीति का समुचित सामंजस्य दिखलाया है।

३. चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह काण्ड विशिष्ट बन पड़ा है। अयोध्याकाण्ड में राम का शील सर्वाधिक मात्रा में व्यक्त हुआ है। इस काण्ड की चरित्र विषयक प्रमुख विशेषता यह है कि तुलसीदास ने कम से कम शब्दों में दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, राम और भरत के चरित्र को उभार दिया है।

४. अयोध्याकाण्ड की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कवि ने जनतांत्रिक भावनाओं का समावेश किया है। कवि ने राम को जनसामान्य के सम्पर्क से दूर राजोचित गरिमा से घिरे रहकर एकान्त जीवन बिताने वाले शासक के रूप में चित्रित न करके एक सच्चे जन नेता के रूप में उपस्थित किया है।

५. इस काण्ड में तुलसीदास ने लोक विश्वासों और वन्य जातियों की संस्कृति की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। वन्य जातियों में निषाद, काल, कीरातों का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है।

६. तुलसीदासजी ने इस काण्ड में अपने महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने जनतांत्रिक राजा को ही आदर्श राजा माना है और श्रीराम को इसी रूप में चित्रित किया है। उनके अनुसार राजा को नीतिज्ञ और प्रजाप्रेमी होना चाहिए।

७. यों तो समस्त रामचरितमानस ही गोस्वामी जी की अद्‌भुत काव्य प्रतिभा का सूचक है पर अयोध्याकाण्ड में यह कौशल और भी अधिक अभिव्यक्त हुआ है। इस काण्ड में प्रधानता करुण और भक्ति रस की है, किन्तु श्रृंगार, वात्सल्य, वीर, रौद्र, भयानक और शान्त रस भी स्थान-स्थान पर आये हैं।

८. संवाद कौशल्य की दृष्टि से भी अयोध्याकाण्ड एक विशिष्ट और प्रभावशाली काण्ड है। इसमें आए संवाद आकर्षक रोचक, प्रसंग और परिस्थितियों के अनुकूल तथा पात्रों और भावों के अनुसार हैं।

७.४ सारांश

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विरचित प्रख्यात महाकाव्य रामचरितमानस के द्वितीय सोपान अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु पूर्णरूपेण व्यवस्थित, भावानुयामी तथा अधिकारिक मानवीय धरातल पर संगठित की गई है। यह अपने आप में सर्वथा पूर्ण, अंगीरस से युक्त तथा मानस के अंश रूप में से भिन्न स्वतःमें प्रबन्ध काव्यमयी है। इस काण्ड की कथावस्तु के संगठन का

munotes.in

धरातल सर्वधा भिन्न है। मूल कथा राम के निर्वासन की ही है किन्तु सम्पूर्ण कथावस्तु के साथ जिस वातावरण का निर्माण करता है, वह लोकात्मक तथा सहज संवेदना प्रवण है। वह राम में लोकादर्श का निर्माण करता है। राम लोकादर्श के प्रतीक हैं। धर्म ही नहीं, वह लोक की समग्र आस्था, स्नेह, प्रेम, श्रद्धा, भक्ति सभी मूल्यों के आधार हैं। कवि उनकी प्रियता के लिए सद्वृत्तियों एवं सद्‌गुणों को ही आधार नहीं बनाता परस्पर लोकात्मक स्नेह तथा शील को भी उनमें चित्रित करता है। राम के वन गमन प्रसंग को देखने से स्पष्ट है कि उसका आधार धर्म नहीं है। लोक का व्यापक स्नेह-शील ही उसका आधार है। इसी स्नेह तथा शील के साथ भक्ति का संस्पर्श कराकर कवि सम्पूर्ण कथाफलक को उदात्त तथा व्यापक भावभूमि प्रदान करता है।

७.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।

२) "रामचरितमानस का अयोध्याकाण्ड एक विशिष्ट काण्ड है" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

३) अयोध्याकाण्ड की विशेषताओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

७.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१. अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्द्ध का सम्बन्ध किसके चरित्र से हैं ?

२. कैकयी दशरथ से कौनसा वरदान माँगती है ?

३. दशरथ कैकयी से क्या अनुरोध करते हैं ?

४. केवट राम को अपनी नाँव में क्यों बैठने नहीं देता है ?

५. किसने राम, लक्ष्मण और सीता को वन में छोड़ा ?

६. भरत अपने परिजनों एवं पुरजनों के साथ राम से कहाँ मिलते हैं ?

७. भरत को सेना के साथ देखकर किन्हे भ्रम होता है ?

८. सीता ने आचरण को देखकर जनक ने क्या कहा ?

९. भरत कहाँ रहकर तपस्वी जीवन जीते हैं ?

१०. अयोध्याकाण्ड का प्रधान रस कौन-सा है ?

७.७ संदर्भ ग्रंथ

१. श्रीरामचरिमानस द्वितीय सोपान (अयोध्याकाण्ड) - सं. डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

२. तुलसीदास - नंदकिशोर नवल

३. तुलसीदास - सं. उदयभानु सिंह

४. रामचरितमानस - सं. सुधाकर पाण्डेय

५. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह

६. त्रिवेणी - आ. रामचन्द्र शुक्ल

❖❖❖❖

munotes.in

८

भरत का चरित्र (भरत की भ्रातृभक्ति)

इकाई की रुपरेखा :

८.० इकाई का उद्देश्य
८.१ प्रस्तावना
८.२ भरत के चरित्र का विकास
    ८.२.१ आदर्श भाई
    ८.२.२ साधुता और सज्जनता
    ८.२.३ विवेकी पुरुष
    ८.२.४ धर्म के प्रति आस्था
    ८.२.५ विनम्रता और विनयशीलता
    ८.२.६ पश्चताप और प्रायश्चित
    ८.२.७ अविकारी और निःस्वार्थ
८.३ सारांश
८.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न
८.५ लघुत्तरीय प्रश्न
८.६ सन्दर्भ ग्रन्थ

८.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषयवस्तु के अध्ययन से अध्येता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश निहित है -

- अयोध्याकाण्ड के आधार पर भरत की चरित्रगत विशेषताओं की जानकारी देना।
- भरत की भ्रातृभक्ति की जानकारी देना।

८.१ प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास के भक्त ह्रदय और कवि कर्म की पराकाष्ठा यदि देखनी हो तो भरत के चरित्र-चित्रण से बढ़कर उपयुक्त स्थल मिलना कठिन है। वस्तुतः अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्द्ध के नायक भरत ही है, राम नहीं -

'लखन राम सिय कानन बसहीं।' भरत भवन बसि तप तनु कसहीं।।
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब विधि भरत सराहन जोगू।।

दुर्लभ सीता-राम-प्रेम-पीयूष को सर्वजन सुलभ बनाने की क्षमता यदि किसी में थी तो भरत में, इसलिए भक्त कवि तुलसी काण्ड की फलश्रुति के रूप में घोषणा करते हैं कि भरत चरित का नियमित श्रवण करनेवाले को भवरसविरति और अविच्छिन्न रामचरणति अवश्य उपलब्ध होगी।

रामचरितमानस के सर्वोत्तम पात्रों में भरत की गणना की जाती है। भरत का चरित्र तुलसी की अनुपम सृष्टि है। उनका व्यक्तित्व धर्म का साक्षात् विग्रह है। वे अपनी भ्रातृभक्ति के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तुलसी ने अपनी भक्ति के प्रतिमान के रूप में भरत के चरित्र का सृजन किया है और उन्हें सूर्यवंशरूप तालाब का हंस कहा है जो गुणरूपी दूध को ग्रहण करके अवगुण रूपी पानी को छोड़ देता है। तुलसी का आदर्श भरत है। उनका दिव्य चरित्र निष्कलंक है। उसमें धर्मशीलता, लोकभीरुता, स्नेह और भक्ति का सामंजस्य है, उनकी निःस्वार्थता, भ्रातृप्रेम और कर्तव्य परायणता की महिमा अद्वितीय है। भरत चरित्र का स्तर जनक जीने कितनी विद्ग्धता और ह्रदयस्पर्शी रूप में व्यक्त किया है -

"परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहु मनहुं निहारे।।
साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरतमत एहू।।"

८.२ भरत के चरित्र का विकास

रामचरितमानस में चित्रित भरत का चरित्र बालकाण्ड में नगण्य ही है। वहाँ भरत और शत्रुघ्न दोनों नगण्य ही हैं। लक्ष्मण का चरित्र और उनकी चारित्रिक विशेषता सत्य का पक्ष और अन्याय का विरोध बालकाण्ड में परशुराम संवाद आदि स्थानों पर झलकती है, परंतु भरत तो वहाँ अनदेखे ही रह जाते हैं। अयोध्याकाण्ड में भरत के चरित्र का विकास करने का अवसर वाल्मीकि और तुलसीदास तथा अन्य राम कथा के कवियों को मिल जाता है। तुलसीदास ने राम के वनवास का अवसर देखकर भरत के चरित्र की जो रूपरेखा उनके मस्तिष्क में थी, उसे एक-एक करके अंकित कर दिया है। राम जब वन को प्रस्थान करते हैं, तब भरत ननिहाल में थे। भरत की माँ कैकयी ने भरत से पुछे बिना ही राम को वनवास और भरत के लिए राजतिलक माँग लिया था। इसी घटना के फलस्वरूप राजा दशरथ की मृत्यू हुई। जब भरत ननिहाल से आए तो सबसे पहले उन्होंने माँ से यही पूछा कि - 'मेरे आराध्य राम कहाँ हैं?' यहीं से भरत के सद्गुणों की महायात्रा आरम्भ हो जाती है। शील, गुण की सम्पूर्ण काया जो राम में दृष्टव्य होती है, वह भरत में भी उसी सौन्दर्य के साथ अंकित है।

भरत का चरित्र -

भरत के चरित्र का सम्पूर्ण विकास राम के वियोग में दुःखी भरत की मानसिक स्थिति से होता है, जिसमें वे राज की बात छोड़कर पहले अपने भाई से मिलने वन में चले जाते हैं। सारी अयोध्या साथ है। तुलसीदास ने लोक के बीच में माता, गुरु,सचिव, प्रजा, दास-दासी, पथिक, अन्य भूपतियों के सान्निध्य में भरत के चरित को एक ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। भरत राम से मिलने के लिए चित्रकूट के पास पहुँच गए है। इस अवसर पर भरत की अनेक चारित्रिक विशेषताओं का प्रकाशन हो जाता है। भरत की चारित्रिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

munotes.in

८.२.१ आदर्श भाई -

रामचरितमानस विभिन्न आदर्शों का काव्य है। तुलसीदास ने मानस में विभिन्न चरित्रों को अलग-अलग आदर्शों का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। राम आदर्शों के समुच्चय हैं। भरत को भाई का आदर्श बनाकर अवतरित किया गया है। जो जो गुण-स्नेह, उदारता, त्याग, विनम्रता, मर्यादा शील आदि भले भाई में होने चाहिए वे सब भरत के चरित्र में सन्निहित हैं। जब भरत ननिहाल से लौटते हैं तब कैकयी अपनी करनी को आदि से अन्त तक कहती है कि मैंने तुम्हारे लिए राम को वनवास दिलाकर तुम्हारे लिए राज्य माँग लिया है। यह सुनते ही भरत पर मानों गाज गिर जाती है। राम उनके लिए केवल बड़े भाई ही नहीं थे, स्वामी भी थे। अतः वे अपनी माता की इस स्वार्थ पूर्ण कुल मर्यादा तथा लोक रीति के विरुद्ध व्यवहार को धिक्कारते हैं। उनका अपनी माँ के प्रति सीधा धिक्कार है -

"हंसवंश दशरत जनक राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई, विधिसन काह बसाइ।।"

ऐसे उत्तम निष्कलंक वंश में कैकयी ने मातृ-पद को ही कलंकित किया था। भरत अपने भाई राम के प्रति इतने अनुरक्त थे कि अनुचित कार्य करनेवाली माता को भी उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि

"वर माँगत मन भई नहिं पीरा। जरेउ जीभ मुख परेउ न कीरा।।
जो हसि सो हसि मुँह मसिलाई। आँख ओट किन बैठहु भाई।।"

एक ऐसा भाई जो अपने जीवन में सत्य, न्याय और सम्बन्धों की पवित्रता तथा गुरुता को पूरी निष्ठा से निभाता है, वह भरत ही है। तभी तो लक्ष्मण द्वारा भरत के ह्रदय की पवित्रता पर सन्देह करने पर स्वयं राम कहते हैं -

"लखन तुम्हार सपथपितु आना।
सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना।।"

यही नहीं, भरत के वन आगमन के उद्देश्य को भी राम जानते थे कि भरत मेरे प्रेम में इतने व्याकुल हैं कि राजपाट छोड़कर ही चले आ रहे हैं। राम को भाई भरत का बहुत संकोच है-

"सो सुनि रामहि भा अति सोचू।
इत पितु बच उत बन्ध संकोचू।।"

८.२.२ साधुता और सज्जनता :

भरत का चरित्र गोस्वामी तुलसीदास जी ने अत्यन्त कुशलता से अंकित किया है। उनका स्वभाव सहज में ही साधुता की सीमा लाँघ जाता है। एक साधु पुरुष, सज्जन व्यक्ति में जो धीरता, अमान और उचित समय पर उचित निर्णय लेने की क्षमता होती है, वह सब भरत में हैं। स्वयं लक्ष्मण भी उनकी इस प्रवृत्ति को भली प्रकार जानते हैं। जो लक्ष्मण भरत को राम का विरोधी मानकर सम्भावनाओं के कारण ही आग बबूले हो उठे हैं, वे स्वयं भरत की साधुता के सम्बन्ध में कहते हैं -

"भरत नीति रत साधु सुजाना।
प्रभु पद प्रेमु सकल जग जाना।।"

भरत की साधुता का सुन्दर उदाहरण उस समय देखने को मिलता है जब राम-वन गमन की मूल योजना प्रस्तुत करने वाली मन्थरा को शत्रुघन झोंटा पकड़ कर खींचते हैं तब - "भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई" - कैसी साधुता एवं दयालुता है जो सभी को गद्गद् कर देती है। भरत उस वृद्धा की यह दुर्गति नहीं देख सके, यद्यपि उसने अपराध बहुत बड़ा किया था।

८.२.३ विवेकी पुरुष :

तुलसीदास जी ने भरत को राम की प्रतिष्ठाया के रूप में ही प्रस्तुत किया है। रावण जैसे धर्म विरोधी को मारने के अवसर तो उन्हें नही मिला, क्योंकि वे अयोध्या में ही रहें किन्तु लोक शत्रुओं को नष्ट करने के अतिरिक्त राम के चरित्र में जो भी कुछ है वह ज्यों का त्यों भरत में उतरा है। भरत मात्र भावुक भाई या राम के परम भक्त ही नहीं हैं वे विवेकशील भी है, अतः किस समय क्या करना चाहिए इसका निर्धारण वे अपने विवेक से तत्काल कर लेते हैं। अयोध्या में जब वशिष्ठ उन्हें राजा की आज्ञानुसार राज्य देना चाहते थे तो उनके विवेक ने इस व्यवस्था को उस समय ठुकरा दिया और उन्होंने राम से मिलने जाने की योजना वशिष्ठ जी के सामने रख दी तथा उनकी सहमति के बाद तत्काल उसे क्रियान्वित भी कर दिया। इसीप्रकार चित्रकुट में पहुँचने पर जब अन्य सभी लोग स्नानादि में लगे हुए थे, तभी भरत ने यह निर्णय ले लिया कि हम दोनों भाई तत्काल राम के आश्रम में जाते हैं, बाकी सब लोग बाद में वहाँ पहुँचेंगे। वे राम से मिलने के लिए इतने अधिक उतावले और अधीर हो रहे थे। राम उनके विवेकी स्वभाव को जानते थे। लक्ष्मण को तो शंकाओं ने घेर लिया था कि भरत के मन में निश्चय ही कोई कपटपूर्ण योजना हैं तभी तो दोनों भाई सेना सजाकर यहाँ आए हैं -

"कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी।
जानि राम बनवास एकाकी।।
करि कुमंत्र मन साजि समाजू।
आए करै अकंटक राजू।।"

किन्तु राम तत्काल लक्ष्मण को टोकते हैं और भरत के इस कार्य को विवेक पर आधारित ही मानते हुए कहते हैं -

"भरत हंस रविबंस तड़ागा।
जनम किन्ह गुण दोष विभागा।।
गहि गुन रय तजि अवगुण बारी।
जिन जस जगत कीन्हिं उजियारी।।"

भरत तो हंस के समान विवेकी है, जो तीर, क्षीर को अलग करने की चतुराई रखते हैं।

८.२.४ धर्म के प्रति आस्था :

भरत का चरित्र धर्म के दस लक्षणों का व्यावहारिक समूह है। क्षमा, घृति, मार्दव, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्य आदि सभी धर्माचरणों में भरत ने कभी शिथिलता नहीं बरती। बल्कि यह कहे तो ज्यादा उपयुक्त होगा कि ये सभी धर्म के लक्षण सहज स्वभाव से उनके जीवन के अंग बन गये थे। भरत के गुण और शील स्वभाव को कहते कहते स्वयं राम गद्गद् हो जाते हैं। देवताओं ने आकाशवाणी द्वारा भरत को धर्माचारी ही नहीं अपितु धर्म का रक्षक और धारक बताकर उनकी वन्दना की है -

"जो न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धुरि धरनि धरत को।।
कवि कुल अगम भरत गुन गाथा।
को जानई तुम बिनु रघुनाथा।।"

८.२.५ विनम्रता और विनयशीलता :

यों तो धर्म के लक्षणों में ही इस गुण का भी समावेश हो जाता है, किंतु विनयशीलता का प्रकाशन जैसे राम के चरित्र में सर्वत्र होता है, उसी प्रकार सभी अवसरों पर भरत अपनी विनयशीलता से सभी को मुग्ध कर देते हैं। चरित्र का ऐसा औदात्य मानव मात्र के लिए प्रेरणास्पद बन जाता है। जब भरत मंदाकिनी स्नान के बाद स्वयं अग्रिम दल के रूप में राम के पास जाने की सोचते हैं तब वे विनम्रतापूर्वक माता, गुरु और सचिव तक से आज्ञा माँगते हैं -

"सरित समीप राखि सब लोगा।
माँगि मातु गुरु सचिव नियोगा।।"

इतना ही नहीं, वे अपने मन में अपनी माँ की करतूत को सोच-सोच कर बड़े दुःखी होते हैं और राम के अनुग्रह का विचार करके उल्लासित होते जाते हैं -

"मातु मते महं जानि मोहि जो कछु कराहिं सो थोर।
अध अवगुन छमि आदरहिं समुझि अपनी ओर।।"

उनकी विनयशीलता इसी में है कि राम जो भी दण्ड दे या व्यवहार करें, वह उनकी माँ की करतूत को देखते हुए नगण्य ही होगा। सहज रूप में यह स्वीकार करना विनम्रता और विनयशीलता की पराकाष्ठा है।

८.२.६ पश्चताप और प्रायश्चित :

भरत का चरित्र अपने दोषों और अपराधों पर प्रायश्चित प्रकट करने के कारण और भी अधिक उज्ज्वल हो गया है। वे राम वन गमन के पीछे सारा दोष अपना ही स्वीकार करते हैं। कैकयी भरत की माँ है, अतः पुत्र को माता के मत में ही समझा जा सकता है। अतः भरत स्वयं ऐसी स्थिति में संकोच में पड़ जाते हैं कि राम के सामने कैसे मुँह दिखाऊँगा? आत्म दोषों को गुनते हुए भी वे विगत कलुष हो जाते हैं और राम की शरण में ही विश्राम लेते हैं -

"मोरें सरन रामहि की पनहीं।
राम सुस्वामि दोष सब जनही।।
अस मन गुनत चले मग जाता।
सकुच सनेह सिथिल सब गाता। "

८.२.७ अविकारी और निःस्वार्थ :

भरत के चरित्र में विकार कहीं नहीं दिखाई देते, कहीं भी चारित्रिक शैथिल्य के दर्शन नहीं होते। वे राम के परम भक्त है। राम ही उनके लिए परम कर्तव्य हैं तभी तो राम के लिए उन्होंने अपनी माता का ही परित्याग कर दिया। राम के प्रेम में पड़कर माता को भी बाँझ रहने के दुर्वचन तक वे सुना देते हैं। उनके मन में किसी भी प्रकार का स्वार्थ नहीं ठहर पाता। राजा

दशरथ भरत को अयोध्या का राज्य देकर गये थे। राम ने पिता की आज्ञा से वन पथ स्वीकार किया था तो भरत को भी पिता की आज्ञा माननी चाहिए थी, किन्तु भरत ने राम के बिना अयोध्या के राज्य को ठुकरा दिया और पहले राम से मिलने के लिए उपस्थित हुए। राज्य की व्यवस्थाएँ भी उन्होंने राजा होने के नाते नहीं देखी, अपितु राम की धरोहर मानकर जनता की सार सम्भार करते रहे। स्वयं नन्दी ग्राम में तपस्वी का जीवन जीते रहे। राम से चित्रकुट में मिलने के बाद केवल राम की चरण पादुकाएँ साथ लाए जिनके सहारे वे चौदह वर्ष की अवधि बिता सके। ऐसा निःस्वार्थ भक्त और भाई अन्यत्र दुर्लभ है। उन्हें तो अपने भक्तिबल का सम्बल हमेशा रहा है। चित्रकूट में जाते समय माँ की करतूति जानकर दुःखी हुए भरत राम के स्वभाव को जानकर और अपनी भक्ति को आधार मानकर वे उत्साहित होते हैं -

"फेरत मनहुँ मातु कृत खोरी।
चलत भगति बल धीरज धोरी।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ।
तब पथ परत उताइल पाऊ।।"

इस प्रकार भरत का चरित्र सभी प्रकार से उज्ज्वल और आदर्शमय है। उसमें विनम्रता, विनयशीलता, धार्मिकता, सज्जनता और मर्यादा तथा आदर्शता का समुचित सामंजस्य देखने को मिलता है।

८.३ सारांश

यद्यपि रामचरितमानस के नायक भगवान श्रीराम हैं किंतु भरत का चरित्र भी अपनी उदात्त आदर्शवादिता और औचित्य की तुलना पर राम के समकक्ष ही दिखाई देता है। अयोध्याकाण्ड के उत्तरांश के कथानायक भरत हैं। भरत की कथा कवि द्वारा तब आदर्श की स्थापना के लिए लिखी गई है। भरत श्रीराम के लघु भ्राता है। राम के लिए सर्वस्व त्याग, उनके दर्शन भी महती उत्कण्ठा एवं हर्षातिरेक, वहाँ तक पहुँचने के लिए सम्पूर्ण संकटो का वरण, अपने सम्पूर्ण जीवन को आराध्य राम की प्रियता के अनुकूल परिवर्तित करने का भाव और उसके लिए अगाध मोह ये ऐसे तत्व हैं, जो उन्हें भाई की अपेक्षा भक्त अधिक स्वीकार कराते है। सीधे -सीधे आराध्य की कृपा वत्सलता का प्राप्त करने के लिए यहाँ आराधक का उत्कटता भरा हठ है। अपने इस हठ से नाना प्रार के संकटों को भोगते हुए अन्ततया आराधक आराध्य के ह्रदय में अमिट स्थान बना लेता है -

"भरत सरिस को राम सनेही। जग जप राम रामु जप जेही।।"

८.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. अयोध्याकाण्ड के आधार पर भरत की चरित्रगत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
२. अयोध्याकाण्ड के आधार पर भरत की भ्रातृभक्ति पर प्रकाश डालिए।

८.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्ध के कथानायक कौन है ?
२. तुलसीदास के अनुसार भरतचरित का नियमित श्रवण करनेवालों को क्या लाभ होगा ?
३. तुलसीदास ने किस रूप में भरत के चरित्र का सृजन किया है ?
४. तुलसीदास किसे सूर्यवंश रूपी तालाब का हंस कहते है ?
५. भरत राम से मिलने जाने की योजना किसके सामने रख देते हैं ?
६. देवताओं ने आकाशवाणी द्वारा भरत की वंदना क्या बताकर की है ?
७. भरत किस नदी में स्नान करके राम के पास चित्रकूट जाने की सोचते हैं ?
८. राम से मिलने जाने से पहले भरत किससे विनम्रतापूर्वक आज्ञा माँगते हैं ?
९. भरत ने अयोध्या की राज्यव्यवस्था क्या मान कर देखी ?
१०. राम से मिलने के बाद भरत अपने साथ क्या ले आए थे ?

८.६ संदर्भ ग्रंथ

१. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह
२. तुलसी - सं. उदयभानु सिंह
३. तुलसीदास - नंदकिशोर नवल
४. त्रिवेणी - आ. रामचन्द्र शुक्ल
५. श्रीरामचरिमानस द्वितीय सोपान (अयोध्याकाण्ड) - सं. डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह
६. रामचरितमानस - सं. सुधाकर पाण्डेय
७. तुलसी की साहित्य साधना - डॉ. लल्लन राय
८. विश्व कवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य - डॉ. रामप्रसाद मिश्र
९. कबीर, सूर, तुलसी - योगेन्द्र प्रताप सिंह

❖❖❖❖

munotes.in

१

मीराबाई

इकाई की रूपरेखा :

१.० इकाई का उद्देश्य
१.१ प्रस्तावना
१.२ मीरा का जीवन
१.३ मीरा की भक्ति का स्वरूप
१.४ मीरा का काव्य-सौंदर्य
१.५ मीरा की विद्रोह - चेतना
१.६ मीरा-काव्य में विरह भावना
१.७ सारांश
१.८ लघुत्तरीय प्रश्न
१.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न
१.१० संदर्भ ग्रंथ

१.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत सम्मिलित की गई विषय वस्तु के अध्ययन से अध्येता को निम्नलिखित जानकारी देने का उद्देश्य निहित है -

- मीरा के जीवन के जीवन के बारे में जानकारी देना।
- मीरा की भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- मीरा के काव्य-सौन्दर्य की जानकारी देना।
- मीरा की विद्रोह-चेतना से परिचय कराना।
- मीरा की काव्य में विरह भावना को स्पष्ट करना।

१.१ प्रस्तावना

भक्ति आंदोलन एक ऐसा आंदोलन था, जिसने अपने समय में पूरे भारतवर्ष के साहित्य और संस्कृति को सर्वाधिक प्रभावित किया था। भक्तिकालीन कविता अपनी संवेदना में दूरगामी प्रभाव पैदा करने वाली कविता थी। इस काल को यूं हिंदी कविता का स्वर्ण काल नहीं कहा जाता। एक से बढ़कर एक कवि इन तीन-चार शताब्दियों में पैदा हुए। कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा आदि ऐसे कवि हैं, जिनकी कविता अपने समय के लिए तो बेहद प्रासंगिक थी ही

बल्कि आज भी जनमानस को आंदोलित करने में उतनी ही समर्थ है। कबीर की कविता ने जहाँ पूरे समाज को आंदोलित करने का काम किया। उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से धार्मिक बाह्याचारों, रूढ़िवादिता, जातिभेद, सांप्रदायिकता आदि प्रवृत्तियों को छिन्न-भिन्न करके रख दिया। वहीं तुलसीदास ने अपनी कविता के द्वारा मर्यादावाद की पुनः प्रतिष्ठा की। सूरदास ने अपनी सरस वाणी के माध्यम से जनमानस को कृष्णभक्ति में आकंठ डुबा दिया। इसी कड़ी में मीराँ भी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी। जिन्होंने अपने समय में नारी स्वातंत्र्य और विद्रोह की भावना को जिस तरह अपने जीवन और कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया, वह उस युग में बेहद क्रांतिकारी था। उन्होंने कृष्णभक्ति को एक नया आयाम दिया। मीरा का जीवन-दर्शन हर युग में प्रासंगिक रहा है और आज भी है। वे जिस मानवीय दृष्टिकोण से बिना जातिभेद के कृष्ण की भक्ति में सराबोर रहती थीं, वह आज के समय में भी प्रासंगिक है। रूढ़िवादी राजपूत परिवार में जन्म लेने के बावजूद मीरा ने निडर भाव से पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि का घोर विरोध किया और किसी भी ऐसी शक्ति के सामने झुकने से इनकार कर दिया। इस संबंध में उन्हें प्रताड़ित किए जाने संबंधी कई किंबदंतियाँ प्रचलित है और स्वयं अंत:साक्ष्यों में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि किस प्रकार उनकी स्वातंत्र्य चेतना के कारण उनके प्राण कितनी बार संकट में पड़े, पर इस तरह की घटनाओं ने मीराँ के मनोबल को तोड़ने के बजाय और मजबूत किया। उनका कृष्ण पर अटल विश्वास उन्हें बार-बार मौत के मुँह से वापस ले आता था। मीरा का मनोबल और मजबूत होता जाता था। मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही हिन्दी साहित्य की अनमोल संपत्ति हैं।

भक्तिकाल को व्यापक लोक जागरण का युग कहा जाता है। इस काव्य में मध्ययुगीन सामंती जड़ताओं के विरोध के साथ-साथ समाज और संस्कृति के पुनर्निमाण की चेतना विद्यमान है। भक्त-कवियों ने जनता को सामंती समाज के धार्मिक-सामाजिक अंतर्विरोधों के प्रति सचेत किया। उनके द्वारा विकसित ईश्वर के सगुण-निर्गुण स्वरूप में जनसामान्य के विषमतापूर्ण जीवन के प्रति गहरी करूणा और विषमता से मुक्ति का प्रयत्न था, इसीलिए भक्त कवियों का यह ईश्वरीय रूप तत्कालीन समाज के दलित, वंचित वर्गों में सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ और भक्तिकाव्य ने व्यापक आंदोलन का रूप ले लिया। मीरा के काव्य में भी अपने समय के अमानवीय अंतर्विरोधों की पहचान तथा उनसे संघर्ष का पक्ष प्रबल है। एक और तो उनके काव्य में सगुण-निर्गुण काव्यधारा की संपूर्ण परंपरा अपने श्रेष्ठ रूप में उपस्थित है तो दूसरी और वे कबीर, जायसी एवं तुलसी जैसे कवियों से और आगे बढ़कर मध्ययुगीन समाज में नारी की दारूण स्थिति के प्रति प्रश्न उठाकर भक्ति काव्यधारा में नारी-मुक्ति चेतना का महत्वपूर्ण पक्ष जोड़ती हुई उसकी सामाजिक भूमिका को पूरा करती हैं। मीरा का संपूर्ण काव्य उपर्युक्त भूमिका पर ही रचा-बसा है। मीराबाई १५ वीं शताब्दी में संपूर्ण भारत में व्यापक रूप से प्रसारित वैष्णव भक्ति आंदोलन की मूल्यवान कड़ी हैं। उनके काव्य में भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील विषयवस्तु अपनी समग्रता में उद्घाटित है, जिसे वर्ण-व्यवस्था और नारी-पराधीनता का संरक्षण करने वाले धर्मशास्त्र और सामाजिक विधि-विधान के विरुद्ध विद्रोह के रूप में देखा जा सकता है।

१.२ मीरा का जीवन

भक्तिकाल के अनेक कवियों की भाँति मीराँ का जीवन भी आज प्रामाणिक ढंग से बता पाना काफी शोध कार्यों के बाद संभव हो सका है। उनके जीवन के संबंध में बहुत सारी बातें विवादास्पद रही हैं और विभिन्न विद्वानों के श्रमसाध्य शोध के बाद उनके जीवन के संबंध में कुछ

कहना संभव हो पाया है। मीरा का जन्म राजस्थान के राठौड़ राजपूत घराने में हुआ था। उनके जन्म स्थान कें संबंध में चार मत प्रचलित हैं। पहला मत इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद का है, जिनके अनुसार मीराबाई का जन्म चौकड़ी में हुआ। दूसरे मत के अनुसार मीरा के पिता रतन सिंह मेड़तिया बारह गांवों के जागीरदार थे और इन बारह गांवों में मुख्य स्थान कुड़की था, अतः मीराँ का जन्म कुड़की में हुआ। इस मत को मानने वाले विद्वानों में कविराज श्यामल दास तथा महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा आदि सम्मिलित हैं। तीसरे मत के अनुसार मीरा का जन्म स्थान बाजोली नामक स्थान है। इस मत को मानने वाले डॉ. कल्याण सिंह शेखावत हैं। मीरा के जन्म के संबंध में पर्याप्त शोध के बाद अब यह मत सर्वमान्य है कि मीराबाई का जन्म मेड़ता नामक नगर में हुआ। मीरा के पितामह राव दूदा राठौड़ थे। मीराँ के संबंध में अधिकारी विद्वान श्री. बृजेंद्र कुमार सिंघल का मानना है कि ऐतिहासिक ग्रंथों से पता चलता है कि राव दूदा ने अपने जीवन काल में अपने बेटों को जागीरें प्रदान नहीं की। जब राव दूदा वि.सं. १५७२ में बैकुंठवासी हो गया, तब दूदा के पाटवी पुत्र राव वीरमदेव द्वारा गुजारे के लिए अपने चारों भाइयों को जागीरें बक्शी गईं। जिनमें से कुड़की मुख्यालय की बारह गाँवों की जागीर मीरा के पिता राव रतन सिंह को दी गई। क्योंकि मीरा का जन्म संवत १५६१ में ही हो गया, अतः मीराँ का जन्म अपने पिता की जागीर के गाँव में न होकर पितामह राव दूदा द्वारा स्थापित मेड़ता राज्य के मुख्यालय मेड़ता में ही हुआ। वस्तुतः आज अधिकतर विद्वान इसी मत को मानते हैं।

जन्म स्थान की ही तरह मीरा के जन्म समय, विवाह आदि के संबंध में भी विभिन्न मत मिलते हैं। वस्तुतः है अब अधिकतर विद्वानों के द्वारा मीरा का जन्म संवत १५६१ में होना स्वीकार किया जाता है। उनका विवाह संवत् १५७३ में हुआ, ऐसा लगभग सभी विद्वान मानते हैं। उनका विवाह उदयपुर के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ। उनका वैवाहिक जीवन अत्यंत असफल सिद्ध हुआ। और कुछ समय के बाद भोजराज की असमय मृत्यु हो गई। मीरा आरंभ से ही गिरधर नागर को मन ही मन अपना चुकी थी, इसीलिए इस सांसारिक विवाह के बाद वे अपने पति को मन से अपना नहीं सकीं। भोजराज की मृत्यु के बाद जब उन्हें सती होने के लिए कहा गया तो उन्होंने इंकार कर दिया और अपना जीवन कृष्णभक्ति को समर्पित कर दिया। उस समय मीराबाई का यह विद्रोह बहुत बड़ी घटना थी। मीरा के काव्य में इस तरह का विद्रोहात्मक तेवर कई स्थानों पर देखने को मिलता है। पति की मृत्यु के बाद मीरा इस सांसारिक जीवन से पूरी तरह विरक्त हो गई और इसके बाद उनके जीवन का असली संघर्ष आरंभ हुआ। विरक्त हो जाने के बाद वह अपना ज्यादातर समय साधु-संतों की संगति में हरि कीर्तन करते हुए व्यतीत करने लगीं। उसके बाद उनके साथ विभिन्न स्थानों में भ्रमण आदि भी आरंभ हो गया। इसके लिए उनकी बड़ी आलोचना की गई परंतु गिरधर नागर के रंग में रंगी मीरा ने इसकी कोई परवाह नहीं की। यह भी उनके विद्रोही स्वभाव का ही परिणाम था। इस सबके चलते मीरा को कई बार, कई युक्तियों से मारने का प्रयास भी किया गया, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने पदों में भी किया है। पर यह सारी युक्तियाँ असफल हो गई और कृष्णभक्ति में रची-पगी मीरा का कोई बाल भी बांका न कर पाया।

मीराबाई के पूरे जीवन की भाँति ही उनकी मृत्यु का वर्णन भी अत्यंत रोचक है। माना जाता है कि द्वारिकाधीश के मंदिर में विक्रमी संवत १६०३ में वे द्वारिकाधीश की मूर्ति में समा गई थीं। वस्तुतः मीराबाई का पूरा जीवन ही एक किंबदंती की तरह है। उन्होंने कृष्णभक्ति धारा को अपने काव्य के माध्यम से जो भावमयता और रसमयता प्रदान की, वह किसी और संत कवि के द्वारा संभव नहीं हो सका। मीरा जैसा मतवाला दूसरा कोई भक्तकवि नहीं हो सका।

जहाँ तक मीराबाई के कृतित्व का प्रश्न है उनके नाम पर कई ग्रंथ स्वीकार किए जाते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक मीराबाई की पदावली में कुछ नाम दिए हैं जिने संबंध में वे यह मानते हैं कि यह ग्रंथ उनके द्वारा रचे गए माने जाते हैं - नरसी जी रो मायरो, गीत गोविंद की टीका, राग गोविंद, मीराबाई का मलार, गर्वा गीत, स्फुट पद, सोरठ के पद।

१.३ मीरा की भक्ति का स्वरूप

मीराबाई की कृष्णभक्ति श्री कृष्ण के सगुण स्वरूप के प्रति माधुर्य भाव की भक्ति है, जिसे प्रेमाभक्ति या मथुरा भक्ति भी कहा जाता है। मथुरा भक्ति का प्रधान भाव 'रति' है। इस रति को अलौकिक प्रेम से भिन्न करने के लिए सगुण भक्तों ने इसे 'उज्जवल रस' कहा है। इसके अंतर्गत प्रिय के प्रति चरम तन्मयता और निर्द्वन्द्व समर्पण होता है। देह, मन और आत्मा की मानवीय स्वाभाविकताओं के अनुरुप घटित होते हुए इस प्रेम ने अपने मार्ग की बाधाओं से लड़ने का अद्भुत नैतिक साहस होता है। मीरा की माधुर्य भाव की भक्ति का यही स्वरूप है। महात्मा सूरदास ने माधुर्य भाव की भक्ति को 'सुद्धा भक्ति' कहा है, जिसमें भक्ति का एकमात्र प्राप्य आराध्य होता है एवं भक्त अपने आराध्य को संसार से अपनी मुक्ति के लिए नहीं चाहता। मीरा के लिए भी ऐसा ही है। वे परलोक निवृत्ति अथवा मुक्ति की चिंता न कर कृष्ण के प्रति चरम एकात्म की दृढ़ आकांक्षा करती है -

मैं तो सांवरे के रंग राची।
गई कुमति, लई साध की संगति, भगत रूप भाई सांची।।

जीवन, समाज या संसार के प्रति मीराँ का वैराग्य, अन्य भक्तकवियों से भिन्न प्रकार का है। वे जीवन के असाधु, अमानवीय और अन्यायपूर्ण पक्ष के प्रति विरक्त हैं, परंतु लोकजीवन का साधु, प्रेममय मानवीय पक्ष उन्हें प्रिय है। संत नाभादास ने मीरा के भक्तिभाव को कृष्ण के प्रति गोपिका के प्रेम सदृश लिखा है। पुष्टिमार्ग के अंतर्गत गोपी भाव की इस भक्ति को भक्ति का सर्वोत्कृष्ट रूप माना गया है।

मीरा के भाव जगत के निर्माण में निर्गुण-सगुण भेद का कोई दखल नहीं है और न ही वे किसी गुरु विशेष या भक्ति के संप्रदाय विशेष में दीक्षित हैं। वे भक्ति आंदोलन के मुख्य सार - 'ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण' को पहचानती हैं और इस दृष्टि से भक्ति की उस समूची परंपरा को आत्मसात करती हैं जिसमें जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ सिद्ध-नाथ पंथी साधु और सूफी संत भी हैं। मीरा की भावाभिव्यक्ति वैविध्यता में इस समूची परंपरा का प्रभाव है।

मीरा के एकमात्र अभीष्ट गिरधर नागर हैं और गिरधर नागर से सच्ची प्रीत का प्रत्येक पंथ उन्हें प्रिय है। मीराँ ने कृष्ण का अनेक नामों से स्मरण किया है। उन्हें राम या रमैया कहा है -

रमैया मेरे तोहीसू लागी नेह।

जोगी, जोगिया, रावल आदि संबोधन भी दिए हैं -

जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होई
प्रीत कियाँ सुख न मोरी सजनी! जोगी मित न कोई।

ऐसे पदों में मीरा की अपने आराध्य के प्रति प्रेम की तीव्रता दीवानगी की हद तक है। प्रेम की इस तीव्रता को सूफी संतों के प्रभाव से भी जोड़ा जाता है। मीरा ने कुछ पदों में सतगुरु का भी उल्लेख किया है, इसीलिए मीराँ को निर्गुण संत परंपरा का भी प्रमाणित करने का प्रयास किया जाता है। मीरा की भक्ति में अन्य संत कवियों की भाँति आध्यात्म की रहस्यवादी जटिलताएँ प्रायः नहीं हैं। उनका भावजगत उनके व्यक्तित्व की ही भाँति पूरी तरह से व्यक्त और प्रत्यक्ष है तथा वे अपने प्रत्येक भाव के साथ कृष्ण के प्रति सहज संबोधित है। कृष्ण का अद्भुत अलौकिक सौंदर्य मीराँ की अनुरक्ति की मूल प्रेरणा और आकर्षण है। मीरा की भक्ति में पुष्टिमार्गीय भक्ति के भी कुछ लक्षण प्रकट होते हैं, जैसे प्रभु के स्वरूप एवं गुण का स्मरण, कीर्तन, प्रभुलीला एवं भक्ति-हितकारी स्वरूप का निरूपण, उनकी वंदना, आत्मनिवेदन, नैकट्य की आकांक्षा की अभिव्यक्ति, सत्संग, तादात्म्य एवं समर्पण आदि। मीराँ स्वयं अपनी भक्ति को 'भगति रसीली' कहती हैं। यह भक्ति उनके लिए अमर रस का प्याला है, जिसे पीकर वे दुर्मति, कालप्रकोप और नश्वर संसार से सहज ही मुक्त हैं।

मीरा के आराध्य कृष्ण उनके अविनाशी सुहाग हैं। उनकी भक्ति में कहीं स्वकीया का अधिकार और आत्मविश्वास है तो कहीं वे प्रिय को परकीया की तरह उपालंभ भी देती हैं। मीरा प्रेम की ही नहीं, दरद की भी दीवानी है -

हे री मैं तो दरद दीवानी मेरा दरद न जाणै कोय।
....
मीराँ की प्रभु पीर मिटैगी, जद बैद सांवलिया होय।

इस प्रकार मीरा की माधुर्य भाव की भक्ति सगुण-निर्गुण भक्ति की समूची परंपरा के सार को आत्मसात करती हुई आध्यात्मिकता को मानवीय राग-विराग से संपन्न भावलोक सौंपती हुई अपनी अभिव्यक्ति में सहज, अनूठी और असाधारण है। उसमें स्वानुभूति की तीव्रता और सच्चाई है जिसके द्वारा वह भक्ति -आंदोलन में एक अनूठे रागात्मक स्वर का विधान करती है।

१.४ मीरा का काव्य-सौंदर्य

मीरा मूलतः भक्त हैं और उनका भावलोक आराध्य के प्रति विभिन्न अनुभूतियों से संपन्न है। कृष्ण के प्रति दृढ़ अनुरक्ति ने मीराँ के व्यक्तित्व को अद्भुत आत्मविकास दिया है। वे स्वाधीन और गरिमामयी हैं। उनके जीवन के बड़े आध्यात्मिक उद्देश्य उन्हें संकीर्ण सामंती समाज की क्षुद्रताओं के प्रति विद्रोही और विरक्त बनाते हैं। मीरा का काव्य उनकी भक्ति की सहज अभिव्यक्ति है, जिसमें काव्य की कलात्मक निपुणता के लिए आग्रह या प्रयत्न नहीं है। उनके काव्य में कला भावाभिव्यक्ति के आंतरिक मूल्य के रूप में है। उनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है -

१) कविता की विषयवस्तु : मीरा की कविता का विषय उनकी स्वानुभूतियाँ और जीवन का अनुभव है। प्रेम ही उनके जीवन और भक्ति का सर्वोत्तम सार है। अपनी बाल्यावस्था में ही वह श्री कृष्ण की कल्याणकारी मनोहर छवि की और आकृष्ट हुयीं तथा यह रूपासक्ति उत्तरोत्तर दृढ़ और प्रगाढ़ प्रेम में रूपांतरित होती गयी। मीरा इस संसार या इसके संबंध और भोग-विलास आदि के प्रचंड आकर्षण से कभी विचलित नहीं हुयीं, जबकि वे इनके बीचो-बीच बैठी हुयी थीं। उनका एकमात्र संकट कृष्ण के बिछोह है -

छोड़ मत जाज्योजी महाराज।
मैं अबला बल नाँय गुसाई, तुम मेरे सिरताज।
....
मीराँ के प्रभु और न कोई राखो अब के लाज।।

कृष्ण का गुणगान ही मीरा की कविता का विषय है। उनकी शक्ति से ही मीरा निर्भय और विवेकवान होती हैं। मध्ययुगीन पुरुष सत्तात्मक समाज मीराँ की स्वतंत्र चेतना और साहस को सह नहीं सका। मीराँ के काव्य में इन प्रताड़नाओं का भी वर्णन मिलता है -

राणा जी! थे क्या नै राखो म्हांसू बैर
थे तो राणाजी म्हानै इसड़ा लागो, ज्यूँ बिरछन में कैर।
थांरे रूस्यां राणा! कुछ नहिं बिगड़ै, अब हरि कीन्हा महर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, इमरत कर दियो जहर।

प्रेम और कलह के संसारी रूपों से परिचित समाज उनके इस अनोखे भाव को समझ नहीं पाता और उन्हें कुमार्गी कहता है, परंतु मीरा भी इस हरि-विमुख समाज की कोई परवाह नहीं करती। मीरा ने श्रीकृष्ण के लोकरक्षक लीला स्वरूप का भी चित्रण किया है। ऐसे स्थलों में वे प्रभु की भक्तवत्सलता के प्रसंगों का स्मरण करती हुई विनय के शांत भाव में स्थित दिखाई देती हैं -

हरि! तुम हरो जन की भीर।
द्रोपदी की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धरयो आप सरीर।
....
दासी मीराँ लाल गिरधर, दुःख जहाँ तहाँ पीर।।

इस प्रकार मीरा का काव्य कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति और इस अनुरक्ति के प्रति प्रतिकूल समाज के अनुभवों की अभिव्यक्ति है। मध्ययुगीन समाज की प्रवृत्तियाँ, जो विशेष रूप से स्त्री के दमन के प्रति उत्तरदाई है, मीरा के काव्य में प्रश्नांकित हुई हैं। मीरा के पदों से उनका स्वयं का जो व्यक्तित्त्व उभरता है वह गरिमामय, साधु और साहसी है।

२) मीरा के काव्य में प्रेमानुभूति एवं प्रेम विह्वलता : मध्ययुगीन भक्तिकाव्य में मीरा की पहचान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अद्‌भुत और अनन्य प्रेम-भावना के द्वारा बनती है। यह अनुरक्ति अपने चरम रूप में घटित होती हुई उनके व्यक्तित्व का पर्याय बन जाती है। प्रेम स्वाभाविक रूप से एक व्यापक और उदात्त भाव है। इसकी प्रेरणा से मानव मन की समस्त ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और वह अनवरत आत्मप्रसार को प्राप्त होता है। मीरा का गिरधर नागर के प्रति प्रेम उनकी जीवना अनुभूति से अभिन्न है और इसमें घुल-मिलकर ही मीरा ने अपना समस्त व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभव बांटा और जिया है -

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़े तब ही उठ जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।
रैण-दिना बाके संग खेलूँ, ज्यूँ-त्युं ताहि रिझाऊँ।

मीरा का अंतर्जगत सहज और निर्मल है। उनमें स्त्रियों के लिए अति स्वाभाविक दुर्बलताएँ या जटिलताएँ नहीं है। मध्ययुग में राजस्थान सामंती समाज ने अपनी मिथ्या कुल-मर्यादा के लिए स्त्रियों पर क्या-क्या कहर ढाये हैं, यह किसी से छुपा नहीं है। परंतु मीरा के प्रेम के साहस और शक्ति के सम्मुख यह समाज अपने विधि-निषेध, शास्त्र, पुराण, लोकमर्यादा जैसे सारे स्त्री विरोधी अस्त्रों से सज्जित होने के बाद भी निहत्था साबित होता है। आयु और जीवन संघर्ष के साथ विकसित और प्रगाढ़ होते हुए इस प्रेम ने मीरा को अद्‌भुत आत्मविश्वास प्रदान किया। श्रीकृष्ण को मीरा ने अपना सुहाग माना है। लेकिन अन्य सामान्य सुहागिनों की तरह वे अपने पति के प्रेम को वैयक्तिक अनुभव मानती हुई उसके प्रति संकीर्ण या संरक्षणशील नहीं हैं। उन्हें अपने प्रिय की जग के आर्तजनों के उद्धार के प्रति तत्परता सर्वाधिक प्रिय है।

मीरा के कृष्ण चढ़ती हुई वय के तिरछे, सम्मोहक नेत्रों वाले, अभिराम कृष्ण हैं। वे सुंदर और रसिक हैं। उनके हाव-भाव सम्मोहक हैं। प्रेमजन्य मनोदशाओं का चित्रण करती हुई मीरा इस प्रेम के द्वारा मन व शरीर के अवश हो जाने की बात कहती हैं। उनकी यह अवश दशा स्त्री-स्वातंत्र्य के विरोधी समाज को स्वीकार नहीं किंतु प्रगाढ़ प्रेम में बेसुध मीरा को एकमात्र प्रिय के प्रति अपने प्रेम के निवेदन का ध्यान है। प्रिय की मोहक छवि को नेत्रों में बसाती हुयी, उसकी चेष्टाओं को एकटक निहारती हुयी, उसकी मीठी वाणी को रोम-रोम से सुनती हुयी मीरा कृष्णमय हो जाती हैं -

बसो मेरे नैनन में नंदलाला
मोहनि मूरति साँवरि सूरति, नैना बने विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर वैजन्ती माल।।
क्षुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीराँ के प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।।

इस प्रकार गिरधर नागर के प्रति मीरा की भावनाएँ एवं अनुभूतियाँ तीव्रतम और सक्रिय हैं। उनका आत्मनिवेदन अपने प्रेम के विश्वास से पुष्ट, प्रिय पर उनका अधिकार भाव, प्रियतम की निष्ठा के प्रति उपालंभ या प्रिय के प्रति उनका आकर्षण, समर्पण आदि भाव, भावों के तीव्र संवेगों से युक्त हैं। उनके व्यक्तित्व की निर्भीकता ने उन्हें सहज और स्पष्ट आत्मप्रकाशन का कौशल दिया है। प्रेम को मीरा ने न केवल स्वयं के अपितु मनुष्य मात्र के परम साध्य और जीवन सार के रूप में पहचाना है। मीराँ ने प्रेम को जीवन को मानवीय, उदात्त और समर्पणशील बनाने वाली शक्ति के रूप में चित्रित किया है।

३) मीरा की भाषा : मीरा की काव्य भाषा का स्रोत उनके अपने जीवनानुभव हैं। मीरा ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए एक अनुकूल और उन्मुक्त वातावरण निर्मित करने का संघर्ष किया। साधु समाज में उठना-बैठना, भजन-कीर्तन आदि उनका ऐसा ही प्रयत्न था। इसके अतिरिक्त लोकजीवन से मीरा की गहरी निकटता थी। उनकी सहज, स्वाभाविक आडंबर से मुक्त तथा कला को जीवनी शक्ति से जोड़ने वाली भाषा का स्रोत यह लोकजीवन ही है। राग-विराग को कहने, सुनने के लोक प्रचलित रूपों का मीरा ने बहुत सुंदर उपयोग किया है -

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर।
हमज चितवत तुम चितवत नाही, दिल के बड़े कठोर।
म्हारी आसा चितवनि तुमरी, और न दूजो ठौर।।

उनकी भाषा सादी, सहज और मार्मिक है। उसमें जीवन के सहज रागात्मक, मानवीय स्रोत खुलते हैं। मीरा की भाषा मुख्यतः राजस्थानी है। कुछ पदों में ब्रज और गुजराती का प्रयोग भी दिखाई देता है। उनकी भाषा में पंजाब, मध्य प्रदेश और पूर्वी प्रदेशों की प्रचलित भाषा के कुछ शब्द भी मिल जाते हैं। उल्लेखनीय है कि मीरा के पद मौखिक परंपरा में सर्वाधिक प्रचलित हुए, इसीलिए उनकी भाषा का अपने मूल रूप में बने रहना संभव नहीं लगता। मीरा राजस्थान की थी और इसीलिए राजस्थानी भाषा को उन्होंने गहरी व्यंजकता में साधा है। इस भाषा की बिम्ब निर्माण क्षमता और अर्थ-संदर्भता पर मीरा की सहज पकड़ है। उनकी भक्ति के समान ही उनकी भाषा में भी नाथ-सिद्ध भक्तों की परंपरा के साथ-साथ सगुण भक्त कवियों का अर्जित भाव उनके अर्थ को अधिक सजीव बनाता हुआ शामिल होता है। उनके कृष्ण प्रेम में जीवन की गहराई और वैविध्य तो है ही साथ ही स्त्री जीवन के आघातपूर्ण अनुभव उनके संवेगों को और तीव्र बनाते हैं। मीरा का बल उनके सहज भाव या मर्म पर है और उनकी भाषा इस मर्म को उद्घाटित करने में समर्थ है। उनकी भाषा लोक की अलौकिक दीप्ति से दीप्त है -

जोगिया से प्रीत कियाँ दुःख होई।
प्रीत कियाँ सुख न मोरी सजनी! जोगी मीत न कोई।

या

हरि तुम हरो जन की पीर।
....
बूड़ते गज ग्राह मारयो, कियो बाहर नीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर, दुःख जहाँ तहाँ पीर।

मीरा की काव्यभाषा का प्रधान कार्य कृष्ण के स्वरूप व इस स्वरूप के प्रति उनके एकांत सघन प्रेम का निवेदन है। मीरा की भाषा की सहजता के मूल में उनकी सहज, अकुंठ जीवनानुभूति की शक्ति है। मीरा ने भावनाओं की गहराई का जीवन जिया है। इसीलिए भाषा की सहज संवेद्यता मीरा के लिए कठिन नहीं है। यह उनसे ऐसे ही अनायास सध गई है जैसे कठिन बाधाओं के बावजूद उनकी भक्ति और अनुरक्ति सधी है। उनकी काव्य भाषा में सहजता आंतरिक और अनुभव समृद्ध काव्यमूल्य के रूप में विकसित हुए हैं। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से मीरा की कविता अद्वितीय है।

४) शिल्प विधान : मीरा ने आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रगीतात्मक मुक्तक पदों के शिल्प का चुनाव किया है। प्रगीत आत्मपरक काव्य की विशिष्ट संरचना है। हिन्दी कविता में प्रगीत के शिल्प का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विकास कृष्णभक्त कवियों की काव्य रचनाओं द्वारा हुआ। मीरा प्रगीतात्मक चेतना की रचनाकार हैं। उनके पदों में भावों, स्थितियों या मनोदशाओं के विरुद्ध स्थितियों के बीच नाटकीय द्वंद्व और तनाव का संबंध है। उनका प्रत्येक पद एक अखंड इकाई है, जिसके अंतर्गत उनका सत्य अनुभूति और अभिव्यक्ति के अन्तर्वाह्य अवयवों से रचनात्मक संगति के लिए प्रयत्नशील है। लयात्मकता प्रगीत का नियामक तत्व है और इस लय का संबंध भाव और भाषा दोनों से है। लयात्मकता के संदर्भ में मीरा सिद्धि प्राप्त थीं। संगीत की भी उन्हें अच्छी समझ थी। मीरा साधु-समाज में न सिर्फ अपने पद गाती थीं, बल्कि भाव विभोर होकर नृत्य भी कर उठती थीं।

मीरा की कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता उनकी सपाटबयानी है। मीरा प्रेम की पीर की गायिका हैं। वहाँ अलंकरण का अवकाश ही नहीं था। कृष्ण प्रेम में अनुरक्त ह्रदय, प्रेम की पीर को सहज ढंग और भाषा के साथ अभिव्यक्त करता था। मीरा के काव्य में अलंकारों का सायास प्रयोग देखने को नहीं मिलता है, हाँ अभिव्यक्ति के दौरान अनायास ढंग से जो अलंकार आ गए हैं, बस वही देखने को मिलते हैं। मीरा की सीधी-साधी अभिव्यक्ति ह्रदय पर आघात करती है।

मीरा की कविताओं के शिल्प विधान की कुछ विशेषताओं को लक्षित करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी मानते हैं कि, 'मीराँ की कविताओं का सौंदर्य विशेष ध्वनियोजना में भी है। उनकी पंक्तियाँ राजस्थानी की ध्वनि प्रवृत्तियों के अनुकूल हैं, इसलिए उनमें प्रवाह है। इस प्रवाह में विशिष्ट ध्वनियों का चमत्कार और झनकार है। प्रवाह के कारण उन पंक्तियों की स्मरणीयता बढ़ती है। स्मरणीयता तब आती है जब पंक्तियों की ध्वनि योजना ऐसी हो कि एक ध्वनि से अगली ध्वनि तक जाने में यानी उच्चारण करने में उच्चारण अवयवों को असुविधा न हो। यही नहीं, वे उच्चारण में सहज प्रवृत्त हो जाएँ। ऐसा तभी होता है जब रचनाकार अपनी बोली की अंतरंगता में पैठा होता है, वह बोली की अपनी ध्वनियोजना और वाक्य प्रवाह की ध्वनिगत प्रवृत्ति में खुद रचा-बसा हो। प्रत्येक बोली का अपना वाक्यप्रवाह और अपनी प्रिय ध्वनियाँ होती हैं। कविता की पदावली और उसके छंदविधान का निश्चय इन्ही ध्वनियों और इसी प्रवाह से होता है।'

१.५ मीरा की विद्रोह चेतना

मीराबाई का काव्य और उनकी संवेदना कई संदर्भो में अत्यंत विशिष्ट है। उनका काव्य अपने समय से बहुत आगे का काव्य था। जिस प्रकार भक्ति के स्तर पर मीरा जैसी दीवानगी उस युग में किसी और कवि में देखने नहीं मिलती, उसी प्रकार मीरा जैसी विद्रोही चेतना भी उस युग में कम ही देखने मिलती है। जिस काल में मीरा का जन्म हुआ था, उस समय भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। भारतीय समाज पारंपरिक समाज रहा है। प्राचीन भारत में मनु ने स्त्री के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि स्त्री को बाल्यावस्था में पिता के अधीन युवावस्था में पति के अधीन तथा वृद्धावस्था में यदि वह विधवा हो जाती है तो पुनः अपने पुत्रों के अधीन रहना चाहिए। इस तरह इस समाज में स्त्री की आजन्म किसी न किसी की अधीनता में रहने को विवश थी। यद्यपि प्राचीन काल में कुछ मायनों में स्त्री की दशा इतनी विकृत नहीं थी परंतु भारतीय इतिहास में जो मध्यकाल का दौर था वह अत्यंत रूढ़िवादी और परंपरावादी विचारों से संचालित था। इस दौर में स्त्रियों के जीवन संदर्भ में स्थितियाँ अत्यंत त्रासद हो गई थीं।

मध्यकाल में जिसे हम पूर्व मध्यकाल कहते है, वह सल्तनतकालीन शासकों का काल है और दूसरा उत्तर-मध्यकाल, जो मुगलकाल से आरंभ होता है। इतिहासकार यह मानते हैं कि सल्तनत काल से स्त्रियों की दशा बहुत खराब हो गई थी। उन पर कई पाबंदियाँ थीं। वे मानते हैं कि ऐसा मुख्यतः बाह्य आक्रमणों तथा इस्लाम धर्म के प्रवेश के कारण हुआ। यद्यपि नीति के स्तर पर मुस्लिम समाज में स्त्रियों को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था क्योंकी इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मोहम्मद साहब ने स्त्रियों व पुरूषों को समान अधिकार प्रदान किए है और स्त्रियों की पवित्रता पर बल दिया। परंतु व्यवहारिक स्थिती इतनी सामान्य नहीं थी। उस समय हिंदू तथा

मुस्लिम दोनों ही समाज में पर्दा प्रथा विद्यमान थी। समाज मुख्यतः तीन वर्गों मे विभक्त था- उच्च, मध्यम और निम्न। उच्च वर्ग में शाही परिवार, अमीर, राजा इत्यादि आते थे। मध्यम वर्ग में उस समय चौधरी, खुत, मुकद्दम, जमीदार आदि तथा तीसरे निम्नवर्ग में किसान, बढई, सोनार, चमार आदि जातियाँ थीं। अलग-अलग वर्गों का रहन-सहन भी अलग अलग था। इस्लाम के आगमन के पश्चात हिंदू समाज में स्त्रियों की स्थिती पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उनकी स्थिती में गिरावट आई और जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया स्त्रियों की दशा बदतर होती चली गई। इस समय स्त्रियों की शिक्षा, पहनावें, अधिकार आदि का निर्धारण वर्ग-विशेष के अनुसार होता था। वर्गीय जीवन में बहुत ज्यादा असमानता थी, अतः पूरे समाज में स्त्रियों की दशा भी एक जैसी नहीं थी। उच्च वर्ग में महल की रानियाँ उनके सगे संबंधियों की पत्नियाँ तथा विभिन्न अमीरों की पत्नियाँ आती थीं। इनकी आर्थिक संपन्नता की भाँति इनकी दशा भी उन्नत होती थी। उनके संचालन के नियम भी अलग थे। पूरे मध्यकाल में संभ्रांत महिलाएँ बहुमूल्य आभूषणों का प्रयोग करती थी। पर्दा प्रथा उच्च वर्ग की महिलाओं में ही विशेष रूप से प्रचलित थी क्योंकि पर्दा प्रथा उनकी मर्यादा और उच्चता के प्रतीक रूप उनके जीवन से जुड़ी हुई थी। इस वर्ग की स्त्रियों में पर्दे का त्याग निंदनीय माना जाता था क्योंकि परदे से बागर निकलने का अर्थ इज्जत को सरेआम बेचने जैसा था। पर पुरूष की दृष्टि में उनका अशोभनीय माना जाता था।

मीराबाई का जन्म राजस्थान के राजपूत राजपरिवार में हुआ था। उस समय के राजस्थानी उच्चवर्गीय समाज में कुछ कुरीतियाँ, जैसे जौहर, सती प्रथा आदि व्याप्त थीं। वयोंकि राजपूत अत्यंत स्वाभिमानी होते थे अतः अपनी स्त्रियों की मुस्लिम सुल्तानों से रक्षा करने के लिए जौहर का आदेश दे देते थे। जब इन राजपूतों को इस बात का पता लग जाता था कि वे युद्ध में पराजित हो जाएंगे तो वे वीरता पूर्वक लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दे देते थे। उनकी रानियाँ भी महल में स्वयं को अग्नि में समर्पित कर देती थीं। ऐसा नहीं कि यह प्रथा केवल राजपूतों या हिंदुओं में ही विद्यमान थी बल्कि इस प्रथा ने मुस्लिम समाज को भी प्रभावित किया। जौहर की प्रथा का पालन मुख्यतः इन उच्चवर्गीय राजाओं तथा सामंतो के परिवारों की महिलाओं को करना पडता था क्योंकि युद्धों में उनके पराजित होने पर उनकी स्त्रियों के दूसरे के हाथों में पड़ने की संभावना रहती थी, जो की उनके लिए बहुत ही शर्मनाक बात होती थी। अतः अपने सम्मान की रक्षा के लिए उन्हें जौहर करना पड़ता था। इस दौर में सती प्रथा भी समाज के लिए बहुत बड़ा अभिशाप था क्योंकि उच्चवर्ग में पुनर्विवाह की अनुमती नहीं थी। अतः पति की मृत्यु के पश्चात उच्चवर्ग की स्त्रियों पर एक प्रकार से विपत्ती का पहाड़ टूट पडता था। यह प्रथा हिंदू समाज में प्राचीन काल से प्रचलित थी। पति की मृत्यु के पश्चात उसकी विधवा को अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। उसके जीवन का अर्थ ही निर्मूल हो जाता था। विधवा को लंबे केश तक रखने की मनाई थी। उच्चवर्ग में पुनर्विवाह संभव नहीं था अतः इस व्यर्थ के जीवन को ढ़ोने से बेहतर की चिता के साथ जल जाना ही उसके लिए श्रेयस्कर था। यदि कोई स्त्री सती होना नही चाहती थी तो उसे समाज में बहुत ही निंदनीय समझा जाता था। अक्सर विधवा को सती हो जाने के लिए विवश किया जाता था। मीराबाई के पति भोजराज की मृत्यु के बाद मीरा की सास भी कुछ ऐसा ही चाहती थीं। परंतु मीरा ने यह स्वीकार नही किया। इसी तरह उन्होनें कभी पर्दा प्रथा के नियमों को भी नही अपनाया। सामाजिक रीति-रिवाजों और परंपराओं के प्रति उनके इस दृष्टिकोण के कारण ही पूरा राजपूत समाज उनका दुश्मन हो गया था।

munotes.in

मीराबाई का जीवन आरंभ से ही कुछ अलग रीति से आगे बढ़ा। मीरा काव्य के अधिकारी विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी ने उसके जीवन में कई बातों को प्रमाणिक ढ़ंग से लिखा है। मीराबाई पति सुख से अल्पवय में ही वंचित हो गई थीं। जिस समय वह विधवा हुयी, उस

समय वह युवा थीं और युवावस्था में मिले इस दुखमय वैधव्य के कारण उनके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया। मीरा में कृष्णभक्ति की लगन बचपन से ही आ गई थी और विवाह के बाद अपने ससुराल जाते समय भी वे अपने प्रिय कृष्ण की मूर्ति अपने साथ लेती गई थीं। पति के रहते भी वे अपने गिरधर गोपाल का विधिवत पूजन अर्चन करती रही और वैधव्य मिलते ही उन्होनें सारे सांसारिक बंधनों और मोहमाया को छोड़कर अपना चित्त गिरधर गोपाल में ही लगा दिया। मीरा के लिए पहले उनकी भक्ति थी और बाद में उनका सांसारिक जीवन। यही कारण है कि विवाह के बाद अपनी सास कुंवरिबाई से कभी उनकी नहीं बनीं। भोजराज की मृत्यु के बाद कुंवरिबाई ने मीरा को सती हो जाने के लिए कहा परंतु मीरा ने उत्तर देते हुए कहा कि, 'मै न चोरी करती हूं और न कुमार्ग पर चलती हूं, न अनाचार करती हूं और न अत्याचार करती हूं, न किसी को सताती हूं और न रूलाती हूं। मैं अपने हाल में मस्त रहकर मनमोहन नटनागर गिरिधर गोपाल का भजन करती हूं। मंदिर में दर्शन करती हूं तथा भगवत कथा लीलाओं का श्रवण करती हूं। मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों को भुगत लेने के पश्चात मिलता है। ऐसे सुंदर अवसर को जानबूझकर बर्बाद करके जल मरना कहां की बुद्धिमानी है। मैं मनुष्य जन्म को सफल करने हेतु सती होने के बजाय गिरिधर का भजन करूंगी।' इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि मीराबाई स्वतंत्र चेतना से युक्त महिला थीं और उनके लिए परंपरा, रीति-रिवाज आदि उनके इष्ट से बढ़कर नहीं थे और उन्होनें हर उस परंपरा या रीति-रिवाज का विरोध किया, जो उनकी भक्ति के आड़े आता था।

अपनी स्वतंत्र चेतना के कारण मीरा को ससुराल पक्ष के दवारा अत्यंत प्रताडित किया गया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि राणा विक्रमादित्य ने भांति-भांति के षड़यंत्र रचकर मीरा को खूब प्रताड़ित किया था। इन्हीं सब बातों के कारण संवत १५९० में मीरा ने हमेशा के लिए मेवाड़ छोड़ दिया और अपने पीहर मेड़ता चली गयी। मीरा ने अपनी भक्ति के लिए सांसारिक कष्टों और तकलीफों की बिल्कुल भी परवाह नही कीं। दीवानी मीरा अपने भक्ति के मार्ग पर निरंतर चलती रहीं। उन्होनें अपनी कविता में कई स्थलों पर इस तरह की बातों का वर्णन भी किया है। वे लिखती हैं कि, ऐसी बदनामी उन्हें बड़ी प्रिय है, जो कृष्ण के कारण उन्हें मिलती है -

राणो म्हाने या बदनामी लगे मीठी
कोई निंदो कोई बिंदो में चलूँगी चाल अपूठी।
सांकडली सेत् जन मिलिया क्यूँ फिरूँ अपूठी।
सत्संगति मा ज्ञान सुणै छी, दुरजन लोरूँ नै दीठी।

राणा विक्रमादित्य ने मीरा को कई बार जान से मारने का प्रयास किया पर निडर मीरा ने कभी राणा के सामने न तो सिर झुकाया और न उनकी बातों को ही माना बल्कि राणा की तुच्छ बुद्धि पर उन्हें तरस आता था और वह कहती भी थी कि राणा क्या मुझसे व्यर्थ बैर रखते हो, मैंने तो सब कुछ त्याग दिया है और गिरधर गोपाल में ही मेरी आत्मा रची-बसी है। तुम मुझे मारने का प्रयास करते हो पर तुम्हारे भेजे गए जहर को भी मेरे कृष्ण ने अमृत कर दिया -

राणाजी थे क्यानें राखो म्हासूं बैर
थे तो राणाजी म्हाने इसड़ा, लागों ज्यों ब्रिच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागे, त्याग्यो थारो बसनो सहर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, इमरत कर दियो जहर।।

मीरा को लोगों की बिल्कुल भी परवाह नहीं थी। वह अपनी भक्ति में बिल्कुल दीवानी हो गई थी। परंपराग्रस्त रूढ़िवादी लोग उन्हें तरह-तरह की बातों से संबोधित करते है। कोई उन्हें

बावरी कहता, कोई कुलनाशिनी कहता था और मीरा को यह सब देख और हंसी आती थी। मीरा तो दीवानगी से भर कर कृष्ण के भजनों में नाचती और गाती थी। उन्हें अपने राजपरिवार के होने का बिल्कुल भी गुमान नहीं था। समस्त सांसारिक कष्टों को भी उन्होनें हंसते-हंसते सह लिया था -

पग बाँध घूँघरयाँ णाच्यां री
लोग कहयाँ मीरा बावरी, सासु कहयाँ कुलनासी री।
विख रो प्याला राणा भेजयाँ, पीवां मीरा हाँसी री।

मीरा ने अपने कई पदों में अपने साथ हुई प्रताडनाओं का वर्णन किया है। राणा ने कभी पिटारे में साँप रखकर भेजा, कभी जहर का प्याला भेजा परंतु मीरा की भक्ति का चमत्कार कि साँप पिटारा खोलते ही मीरा को शालिगराम मिलते है और जहर का प्याला मीरा के होठों से लगकर अमृत में बदल जाता है। मीरा ने अपनी भक्ति के लिए कभी भी सांसारिक प्रताड़ना की परवाह नहीं की और कृष्ण कन्हैया की भक्ति में रमी रहीं -

मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय
सांप पिटारा राणा भेज्यों, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
काथ धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अँचाय।

अपने पति की मृत्यु के पश्चात सती न होना तथा अपनी भक्ति के लिए अपनी कुल मर्यादा को त्याग कर साधु-संतो की संगत में रहना, घूमा करना, मंदिर में कीर्तन-भजन आदि करना-यह सब मीरा की विद्रोही चेतना का परिचायक है। उस समय के समाज और स्वयं राणां ने कितना भी प्रयास किया पर वे मीरा को भक्ति विमुख नहीं कर पाए। उस समय मीरा ने भक्ति के प्रभाव में ही सही, जो व्यवहार दिखाया, वह सचमुच उनकी सशक्त विद्रोही चेतना को ही प्रदर्शित करता है। उस काल में सामाजिक रीति-रिवाजों और परंपराओं का विरोध करने की हिम्मत किसी की नहीं होती थी। मीरा की विद्रोही चेतना यदि देखा जाए तो कबीर की विद्रोह चेतना से किसी भांति भी कम नहीं है बल्कि और बढ़कर है। मीरा भले ही एक राज परिवार की स्त्री थी पर उस समय स्त्रियों को इतनी स्वतंत्रता नहीं थी। उन्हें रीति-रिवाजों, परंपराओं और मर्यादाओं के नियंत्रण में ही रहना पडता था। ऐसे समय में बचपन से लगी हुई लगन को मीरा ने बढ़ाया और उसका विकास किया। उस रास्ते में आने वाली समस्त रीति-रिवाजों, परंपराओं और मर्यादाओं को धता बताते हुए वे अपने पथ पर आगे बढ़ती रही। सचमुच मीरा जैसी विद्रोही चेतना उस काल में दुर्लभ थी।

१.६ मीरा-काव्य में विरह भावना

मीरा का काव्य अनुराग और विरह का अद्‌भुत सामंजस्य प्रस्तुत करने वाला काव्य है। जिस प्रकार उनकी भक्ति अत्यंत प्रबल और गहरी थी, कृष्ण पर उनका अनुराग अत्यंत गहरा और आत्मिक था, उसी अनुराग से प्रेरित कृष्ण के प्रति उनका विरह भी अत्यंत गहरा था। मीराबाई के जीवन और काव्य को देखते हुए एक बात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है कि मीरा के अतर्मन में अनुराग और विरह का अद्‌भुत संयोग उपस्थित था। हालांकि उनका जीवन अत्यंत विषादमय था। जीवन भर उनका ह्रदय सांसारिक प्रताड़नाओं से क्षत-विक्षत होता रहा

परंतु सारी अवस्थाएं उनके ह्रदय से कृष्ण के अनुराग को कम नहीं कर सकी। कृष्ण के प्रति उनका अनुराग सांसारिक अनुराग जैसा नहीं था बल्कि वह आत्मिक और आध्यात्मिक था। एक ऐसे व्यक्ति से इतना अनुठा प्रेम करना जिसे हम जानते है कि वह सांसारिक है ही नहीं, बड़ी अनूठी बात है। मीरा के ह्रदय में गिरिधर नागर किस तरह खड़े थे कि उन से बढ़कर यथार्थ उनके लिए और दूसरा कुछ भी नहीं था, और उनका विरह उनके लिए अत्यंत असह्य था। भक्ति भ़ावना से आपूरित मीरा का ह्रदय कृष्ण विरह में अधिकतर विषादमय देखने को मिलता है। उनके विरह के पदों में ही उनकी भक्ति का उच्चतर रूप भी दृष्टिगोचर होता है। मीरा के पदों में सर्वाधिक संख्या ऐसे पदों की है जहाँ उनकी विरह अनुभूति प्रकट हुई है। अपने कृष्ण के प्रति उनका स्वच्छ धवल प्रेम, कृष्ण के प्रति अनन्य अनुराग और विरह से आपूरित उनकी दीनदशा इन पदों में देखते ही बनती है।

मीरा के अधिकारी विद्वान बृजेंद्र कुमार सिंघल कहते हैं, 'मीराबाई विरह और भक्ति की प्रतिमूर्ति है। मीराबाई के अधिकांश पदों मे विरह भाव है। उसके निकट ऐसा कोई विरही भी नहीं है जो उसकी विरह वेदना को समझ सके। उसके नेत्रों में अविरल-अश्रूपात होता है। मुख म्लान तथा शरीर मलिन रहता है। वह प्रियतम को स्थान-स्थान पर तरह-तरह से ढूंढ़ती है किंतु उस नटखट का, निष्ठुर का, कहीं पता नहीं लगता। विरह मीरा का अपना है। वह उसको छोड़ना नहीं चाहती। जो आनंद विरह-वेदना में प्रियतम की अनवरत स्मृति में है, वह संयोग में नही है। विरहावस्था में पल-पल वह प्रियतम से मानसिक तादात्म्य स्थापित किए रहती है। इस तरह विरह की स्थिती में मीरा अपने आराध्य के अत्यंत सन्निकट खुद को पाती थी। इसीलिए विरह की अत्यंत सुंदर व्यंजना उनके काव्य में देखने को मिलती है। मीरा को भली भांति इस बात का एहसास है कि वे जिस गिरधर नागर के प्रेम में व्यथित हैं उससे प्रेम करने के सिवाय दुख के और कुछ नहीं मिलेगा पर फिर भी वे अपने मन के सामने विवश हैं और सब कुछ जानते हुए भी अपने प्रेम के प्रति समर्पित हैं। वे जानती हैं कि नट नागर की चाह सिवाय दुख के और कुछ नहीं देगी, फिर भी वे अपने प्रेम पर आसक्त हैं और कहती है-

जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होई।।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोई।
रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोई।
....
मीराँ रे प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आँणद होई।।

मीरा अपने गिरधर नागर को इस तरह संबोधित करती हैं जैसे वह इस भौतिक जगत का विषय हो। वे उन्हें ईश्वर के रूप में नहीं बल्कि अपने पति के रूप में देखती हैं और इस तरह अपने व्यथित भावों को प्रकट करती हैं जैसे उनका पति परदेस गया हो और वहां से लौट ना रहा हो, एक भी संदेशा ना भेज रहा हो और ऐसे नट नागर की आसक्ति में रत मीरा ने आभूषणों का त्याग कर दिया है, अपने केशों को सँवारना छोड़ दिया है और केवल नट नागर की स्मृति में खोई हुई इस आस में बैठी है कि कब वह सांवलिया आएगा और मीरा उससे मिल सकेगी–

साँवलिया म्हारो छाय रह्या परदेस।
म्हारा बिछड़्या फेर न मिलया, भेज्या णा एक सनेस।
रतण आभरण भूषण छाँड़्या, खोर कियाँ सिर केस।
....
मीराँ रे प्रभु मिलण विण, जीवनि जनम अनेस।।

कृष्ण का विरह मीरा को अत्यंत प्रिय है। वे उस विरह रूपी दरद की दीवानी है और उनका यह दरद अनूठा है, जिसे कोई दूसरा महसूस नहीं कर सकता। अपने प्रेम की पीर को मीरा ही समझ सकती हैं। अपनी इस विरह-व्यथा से वे इतनी व्यथित है कि दर-दर की ठोकरें खाती फिर रही हैं। इस दर्द को उन्होनें अपने ह्रदय में संजो कर रखा है। इस दरद का कहीं इलाज भी नहीं है। यह लाइलाज है। कोई वैद्य इसका इलाज करने में सक्षम नहीं है। अगर कोई है जो इस दरद का इलाज कर सकता है, तो वह खुद नट नागर कृष्ण है। जब वे मीरा से आ मिलेंगे तब ही यह दरद दूर होगा-

हे री म्हा तो दरद दिवाँणी म्हारा न जाण्याँ कोय।
घायल री गत घायल जाण्याँ, हियड़ों अगण सँजोय।
....
दरद की मारयां दर दर, डोल्यां, वैद मिल्या णा कोय।
मीराँ री प्रभु पीर मिटाँगा जब वैद साँवरो होय।।

मीरा अपने विरह में इस तरह आसक्त हैं कि दिन का चैन और रात की नींद, सब हराम है। आंखों ही आंखो में सारी रात गुजर जाती है। नट नागर के विरह के मारे नींद पास तक नहीं फटकती और लेटे-लेटे मीरा इस बात का इंतजार करती रहती हैं कि किस भांति सवेरा हो। दिन और रात मीरा का ह्रदय तड़पता रहता है कि कब आकर कृष्ण उनसे मिलेंगे। और यह जो पीड़ा है, इसे कोई नहीं जानता सिवाय नट नागर के, जिनके हाथों में ही मीरा का जीवन और मरण है-

नींदडी आवाँ णा सारां रात, कुण विधि होय परभात।
चमक उठा सुपुनाँ लख सजणी, सुध णा भूल्यां जात।
तलफां तलफां जियरा जायाँ कब मिलियाँ दीनानाथ।
....
मीराँ पीड़ा सोइ जाणौ, मरण जीवण जिण हाथ।।

विरह संबंधी भांति-भांति की उक्तियाँ मीरा के पदों में मौजूद है। कृष्ण सारे जगत के लिए ईश्वर हैं पर मीरा के लिए उनके प्रियतम नट नागर हैं, जिन्हें मीरा पत्र लिखकर अपनी व्यथा बताना चाहती हैं, पर पत्र भी उनसे लिखा नहीं जाता है। कलम पकड़ते हुए उनके हाथ कांपते है। आंखों में आंसुओं के मारे उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता है। उनका ह्रदय इस तरह बेचैन है कि उन्हें कुछ समझ में नहीं आता कि किस भहानति नट नागर वे अपने नजदीक ले आए-

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिख्योरी न जाय।
कलम धरत मेरो कर कंपत है नैन रहे झड़ लाय।

कृष्ण के बिना मीरा को जीवन बड़ा कठिन लगता है। तन-मन कुछ भी उनके वश में नहीं है। उनका मन इस भांति हो गया है, जैसे घुन लगा हुआ काठ होता है। कृष्ण के विरह में मीरा अपनी सुध-बुध खो चुकी हैं। उनका तन-मन दोनों क्षत-विक्षत है। उन्हें बस एक ही लगन लगी हुई है कि किस भांति गिरधर से उनका मिलना हो सकेगा-

हरि विण क्यूँ जिवाँ री राय।
स्याम बिना बौरा भयाँ, मण काठ ज्यूँ घुण खाय।।

श्याम सांवरिया मीरा के जनम-जनम के साथी हैं और अपने इस जनम-जनम के साथी को मीरा दिन-रात याद करती रहती हैं। अपने ह्रदय में बसे गिरधर से संवादरत रहती है। कृष्ण

के बिना उनके मन को चैन नहीं मिलता। कृष्ण उनके पास नहीं है, यह कल्पना ही उनके लिए बड़ी असह्य है। वे दिन रात उनका पंथ निहारती रहती है कि पता नहीं कब किस दिशा से गिरधर नागर आएंगे और उनका इंतजार करते-करते मीरा की आंखों से आंसू नहीं थमते। उनका ह्रदय निरंतर तडपता रहता है-

म्हारो जणम जणम रो साथी थाँने णा बिसरयाँ दिन राती।
थाँ देख्यां विण कल णा पड़ता जाणे म्हारो छाती।
ऊँचा चढ़चढ़ पंथ निहारयां कलप कलप अँखियाँ राती।

मीरा श्याम के रंग में इस तरह रंगी हुई है कि किसी भी कीमत पर वे उसे छोडने को तैयार नहीं है। घर-परिवार, समाज ने कितनी ही भर्त्सना की पर मीरा अपने गिरधर नागर में ही रमी हुई हैं। मीरा की भक्ति को मिटाने के कितने ही प्रयास हुए पर वे नहीं डिगी। किसी ने उन्हें सर्पदंश से मारने का प्रयास किया, किसी ने उन्हें जहर देने का प्रयास किया, पर मीरा की भक्ति स्वच्छ, धवल और निष्कपट है। यह सारे संकट मीरा ने हंसते-हंसते पार कर लिए। अपने को कृष्ण के हाथों समर्पित कर दिया। इहलोक की चिंता से मुक्त हो गयीं। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति है। और भक्ति से इस रूप में सबसे प्रगाढ़ और मर्मस्पर्शी स्वर विरह का ही है। मीरा जानती है कि कृष्ण से मिलना इस लोक में संभव नहीं है पर फिर भी वे कृष्ण प्रेम में रमीं हुई है और उनके इस प्रेम की अनिवार्य परिणति विरह ही है। इस विरह ने उनके व्यक्तित्व को अलौकिक रंग से भर दिया है। सारा यथार्थ समझते हुए भी मीरा जिस तरह से कृष्ण भक्ति में आकंठ डूबे हुए विरह गान में रत रहती हैं, उससे उनके प्रेम की प्रगाढ़ता स्पष्ट होती है। अपने प्रेम को न पा सकने की जो विवशता है, वह उनके काव्य में अत्यंत प्रगाढ़ ढ़ंग से अभिव्यक्त हुई है। मीरा के काव्य में अभिव्यक्त विरह उनके काव्य का सर्वाधिक सशक्त पक्ष है। उनका मन और शरीर सभी कुछ, सारा अस्तित्व विरह के प्रभाव में है। उन्हें अपनी कोई सुध-बुध नहीं है, न उन्हें अपने खाने-पीने का होश है न उनकी आंखों में कहीं नींद है। बावरी की तरह वे कृष्ण मिलन की आस में इधर-उधर भटकती रहती हैं। वास्तव में जितने प्रगाढ़ विरह का उदाहरण मीरा का काव्य है, वैसे प्रगाढ़ विरह का अन्यत्र मिलना असंभव है। अपने काव्य के इसी पक्ष के कारण मीरा कृष्णभक्त कवियों में विशिष्ट हो जाती हैं।

१.७ सारांश

इस प्रकार मीरा का काव्य उनके सहज, अकुंठ व्यक्तित्व के समान जीवन-राग से स्पंदित और निराडम्बर है। इसमें भावों और अनुभूतियों की गहराई है, जो पूरी तरह से संवेद्य एवं संप्रेष्य है। उनके काव्य में प्रत्येक निर्मल चित्र से एकात्म हो जाने की क्षमता है। मीरा की कविता, कविता नहीं बल्कि उनके प्रेम की पीर का सहज भावनामय उद्गार है, ऐसा उद्गार, जो किसी भी श्रोता या पाठक को रससिक्त कर देता है, प्रेम की उस अनूठी पीर में डुबो देता है।

१.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) मीरा के पितामह का नाम था ?
२) निम्न में से किस विद्वान के अनुसार मीरा का जन्म स्थान बाजोली हैं ?
३) मीराबाई के पति का क्या नाम था ?
४) मीरा का विवाह निम्न में से किस वर्ष हुआ ?

१.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) मीरा की भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
२) मीरा के काव्य में अभिव्यक्त विरह भावना का विश्लेषण कीजिए।
३) मीरा के काव्य सौन्दर्य का सोदाहरण वर्णन कीजिए।
४) मीरा के काव्य में अभिव्यक्त विद्रोह की प्रवृत्ति का विश्लेषण कीजिए।
५) भक्तिकालीन कवियों में मीराँ के वैशिष्ट्य का वर्णन कीजिए।

१.१० संदर्भ ग्रंथ

१) मीरा का काव्य - विश्वनाथ त्रिपाठी; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
२) मीराबाई की पदावली - संपादक आचार्य परशुराम चतुर्वेदी; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

❖❖❖❖

munotes.in